चन्दामामा

जून १९८६

2.50 रु

एक मधुमक्खी थी प्यारी प्यारी
उड़ती फिरती क्यारी-क्यारी॥

छूटता कागज जो थी चिपकाती।
हाल बुरा था–फूटकर वो रो जाती॥

रो रो कर खोने वाली थी होश।
कि दूर से उसने देखे उल्लू खरगोश॥

पढ़ा जब ऊपर नाम फ़ेविगम
खुशी से झूमी मधुमक्खी एकदम

नाचने लगी देखकर उनका गुलाबी रंग
जरूर होगी बढ़िया खुशबू इस रंग के संग

बस। बोतल खोलने की थी देरी
आ गई उससे खुशबू स्ट्रॉबेरी

अब कागज चिपकाने का काम हुआ झटपट
फ़ेविगम से दूर हुए मधुमक्खी के झंझट

फ़ेविगम से मधुमक्खी जैसा मजा पाना
जल्दी से आज ही फ़ेविगम ले आना

प्रस्तुत है!

FEVI GUM

मज़ेदार गम

स्कूल, दफ़्तर और
घर के लिए
सिन्थेटिक पेपर गम

गुलाबी रंग,
स्ट्रॉबेरी की सुगंध,
पंछी और प्राणियों के
आकार की आकर्षक बोतलों
में और प्रचलित ट्यूब में
उपलब्ध.

फ़ेविकोल ब्राण्ड एडहेसिव्स के निर्माता
की ओर से
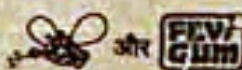
और FEVI GUM दोनों पिडिलाइट इण्डस्ट्रीज प्रा.लि. बम्बई ४०० ०२१ के ट्रेडमार्क हैं. बोतलों की डिज़ाइन रजिस्ट्रेशन हो गई है.

OBM-7369 HN

डायमंड कामिक्स में

डायमंड कॉमिक्स डाइजेस्ट

144 पृष्ठों में मनोरंजन ही मनोरंजन

☐ चाचा चौधरी डाइजेस्ट I	12.00
☐ चाचा चौधरी डाइजेस्ट II	12.00
☐ लम्बू मोटू डाइजेस्ट	12.00
☐ ताऊजी डाइजेस्ट	12.00
☐ राजन इकबाल डाइजेस्ट	12.00
☐ फौलादी सिंह डाइजेस्ट	12.00
☐ मोटू पतलू डाजेस्ट	12.00
☐ चाचा भतीजा डाइजेस्ट	12.00

अंकुर बाल बुक क्लब –

डायमंड कॉमिक्स की बच्चों के लिये नई निराली अनुपम योजना अंकुर बाल बुक क्लब के सदस्य बनिये और हर माह घर बैठे, डायमंड कॉमिक्स डाकव्यय की फ्री सुविधा के साथ प्राप्त करें।

डायमण्ड कामिक्स आज हर बच्चे की पहली पसन्द है। रंग बिरंगे चित्रों से भरपूर डायमण्ड कामिक्स हर बच्चा घर बैठे प्राप्त करना चाहता है। इस इच्छा के सैकड़ों पत्र हमें प्रति दिन प्राप्त होते हैं। नन्हें मुन्नों की मांग को ध्यान में रखकर हमने यह उपयोगी योजना शुरू करने का कार्यक्रम बनाया है। आपसे अनुरोध है इस योजना के स्वयं सदस्य बनें और अपने मित्रों को भी बनने की प्रेरणा दें:–

सदस्य बनने के लिए आपको क्या करना होगा:–

1. संलग्न कूपन पर अपना नाम व पता भर कर भेज दें। नाम व पता साफ-साफ लिखें ताकि पढ़ने में आसानी हो।
2. सदस्यता शुल्क तीन रुपये मनीआर्डर या डाक टिकट द्वारा कूपन के साथ भेजें। सदस्यता शुल्क प्राप्त होने पर ही सदस्य बनाया जायेगा।
3. हर माह पांच पुस्तकें एक साथ मंगवाने पर 2/- की विशेष छूट व डाक व्यय फ्री की सुविधा दी जायेगी। हर माह हम पांच पुस्तकें निर्धारित करेंगे यदि आपको वह पुस्तकें पसन्द न हों तो डायमण्ड कामिक्स व डायमण्ड पाकेट बुक्स की सूची में से कोई पांच पुस्तकें आप पसन्द करके मंगवा सकते हैं लेकिन कम से कम पांच पुस्तकें मंगवाना जरूरी है।
4. आपको हर माह Choice कार्ड भेजा जाएगा यदि आपको निर्धारित पुस्तकें पसन्द हैं तो वह कार्ड भरकर हमें न भेजें। यदि निर्धारित पुस्तकें पसन्द नहीं हैं तो अपनी पसन्द की कम से कम 7 पुस्तकों के नाम भेजें ताकि कोई पुस्तक उपलब्ध न होने की स्थिति में उनमें से 5 पुस्तकें आपको भेजी जा सकें।
5. इस योजना के अन्तर्गत हर माह की 20 तारीख को आपको वी.पी. भेजी जायेगी।

--------------- सदस्यता कूपन ---------------

मुझे अंकुर बाल बुक क्लब का सदस्य बना लें। सदस्यता शुल्क तीन रुपये मनी आर्डर/डाक टिकट से साथ भेजा जा रहा है। (सदस्यता शुल्क प्राप्त न होने की स्थिति में आपको सदस्यता नहीं दी जायेगी) मैंने नियमों को अच्छी तरह पढ़ लिया है। मैं हर माह वी.पी. छुड़ाने का संकल्प करता/करती हूँ।

नाम ....

पिता का नाम ....

पता ....

डाकखाना ....

जिला ....

इस माह के नये डायमंड कामिक्स

कार्टूनिस्ट प्राण का नटखट चरित्र **बिल्लू**

बिल्लू का नया कारनामा

बिल्लू का होमवर्क

अन्य नये डायमंड कामिक्स

☐ अंकुर और जंतर मंतर	4.00
☐ फौलादी सिंह और स्वर्ग के भगवान	4.00
☐ पलटू और भूतों का नाच	4.00
☐ मोटू पतलू और मुफ्त का कुत्ता	4.00
☐ पिंकलू और वन देवी	4.00

—— डायमंड बाल पाकेट बुक्स ——

राजीव के बाल उपन्यास रहस्य रोमांच से भरपूर

चाचा चौधरी और पशु मानव	3.00
मामा भांजा और जादूगर राक्षस	3.00
लम्बू मोटू और करोड़ों का धमाका	3.00
फौलादी सिंह और विचित्र आत्मा	3.00
महाबली शाका और पहाड़ों की रानी	3.00
अण्डेराम डण्डेराम और तकदीर की हेराफेरी	3.00
टारजन और भयानक तूफान	3.00
अंकुर और शैतान का जाल	3.00

3-D Comics English

QUEEN OF JUNGLE	6.00
CHIMPU PIKLU AND BHOLU — GOLU	6.00
MAHABALI SHAKA AND PALACE OF HEAVEN	6.00
HORRIBLE DEATH	6.00
ANOVEL ZOO	6.00

हिन्दी 3-D कामिक्स

जंगल की रानी	6.00
चिम्पू पिंकलू और भोलू गोलू	6.00
महाबली शाका और जन्नत महल	6.00
भयानक मौत	6.00
अनोखा चिड़ियाघर	6.00

हर 3-D कामिक्स के साथ 3-D चश्मा फ्री

डायमंड कामिक्स प्रा.लि. 2715, दरियागंज नई दिल्ली 110002 PUBLICO/DC/JUNE/86

NAME ______________________
CLASS ____________ DIV. ____________
SUBJECT ______________________
SCHOOL ______________________

PARLE Melody Chocolate Toffs

NAME ______________________
CLASS ____________ DIV. ____________
SUBJECT ______________________
SCHOOL ______________________

PARLE POPPINS

NAME ______________________
CLASS ____________ DIV. ____________
SUBJECT ______________________
SCHOOL ______________________

PARLE Gluco

NAME ______________________
CLASS ____________ DIV. ____________
SUBJECT ______________________
SCHOOL ______________________

PARLE Gluco

NAME ______________________
CLASS ____________ DIV. ____________
SUBJECT ______________________
SCHOOL ______________________

PARLE POPPINS

NAME ______________________
CLASS ____________ DIV. ____________
SUBJECT ______________________
SCHOOL ______________________

PARLE Melody Chocolate Toffs

स्कूल की
किताबों पर
लगाओ पारले.
टिफिन
बॉक्स में भी
भरो पारले.

PARLE Melody Chocolate Toffs

PARLE POPPINS

PARLE Gluco

everest/85/PP/334

चन्दामामा

संस्थापकः चक्रपाणि संचालकः नागिरेड्डी

अगर उच्च अधिकारियों में दया एवं न्याय आदि गुणों का लोप हो जाये तो साधारण जनता का जीवन अनेक कठिनाइयों से ग्रस्त हो जाता है। लेकिन जब साधारण जनता में से ही कोई व्यक्ति मिथ्या अधिकार-दर्प के सामने सिर न झुकाकर स्थिति का साहसपूर्वक सामना करता है तो उसका परिणाम अच्छा निकल सकता है। इस तथ्य का निरूपण "सर्वोच्च न्यायालय" शीर्षक कहानी में हुआ है।

अमर वाणी

सद्विद्या शक्यते लब्धुं गुरूणामुपदेशतः ।
शीलं स्वाभाविकं तत्तु लभ्यते नोपदेशतः ॥

[गुरुओं के उपदेश से सद् विद्या को प्राप्त करना संभव है, लेकिन जो स्वाभाविक शील-आचरण है वह उपदेश से प्राप्त नहीं होता है।]

वर्षः ३८ जून १९८६ अंकः१०

एक प्रतिः २.५० वार्षिक चन्दाः ३०.००

A CHANDAMAMA PUBLICATION

दुर्मद गन्धर्व

इंद्रलोक की अप्सरा ऊर्वशी अपने अनुपम रूप के कारण अन्य सारी अप्सराओं में अग्रणी गिनी जाती थी। उसके अलौकिक सौन्दर्य पर मुग्ध होकर दुर्मद नाम के एक गन्धर्व ने उसके साथ विवाह करने की इच्छा प्रकट की। ऊर्वशी ने उस गन्धर्व का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया।

ऊर्वशी चंद्रवंशी राजा पुरुरवा को प्रेम करती थी और उसने उसी के साथ विवाह करने का निश्चय किया था। एक पूर्णिमा को ऊर्वशी पुरुरवा से मिलने की इच्छा लेकर नन्दन वन में पहुँची और एक पुन्नाग वृक्ष के नीचे चंद्रशिला पर बैठकर अपने प्रियतम पुरुरवा की प्रतीक्षा करने लगी।

दुर्मद ऊर्वशी की गतिविधियों का ध्यान रखता था। ऊर्वशी को एकान्त में देख उसने पुरुरवा राजा का रूप धरा और ऊर्वशी के पास पहुँचा। मन्दस्मित से ऊर्वशी ने अपने प्रिय का स्वागत किया। दुर्मद ने ऊर्वशी के गले में पुष्पहार अर्पित किया और वे दोनों प्रसन्नतापूर्वक मधुर वार्तालाप करने लगे।

कुछ देर बाद असली पुरुरवा वहाँ आया। उसे देखकर पुरुरवा रूपधारी दुर्मद परिहासपूर्वक हँस पड़ा। ऊर्वशी दुर्मद के कपट आचरण, उसकी प्रवंचना को चहचान गयी। उसने क्रोध में आकर उसे शाप दिया, "तुम राक्षस बन जाओ!"

दुर्मद इस शाप से विचलित होगया। उसने ऊर्वशी से शाप वापस लेने का अनुरोध किया और अपने अपराध की क्षमा माँगी। दुर्मद की प्रार्थना सुनकर ऊर्वशी ने अपने शाप में संशोधन कर कहा, "तुम पृथ्वी पर मनुष्य रूप में जन्मोगे और युद्ध में वीरमृत्यु को प्राप्त करोगे।"

पुण्य-फल

कौमुदी राज्य के परिसर में एक अत्यन्त विशाल शांतिवन था । उसमें जीवानन्द नाम के एक ऋषि रहा करते थे । जीवानन्द के प्रबोध नाम का एक शिष्य भी था । प्रबोध ने गुरु के निकट रहकर उनसे वेद-वेदांगों का अध्ययन किया था । जीवानन्द प्रायः प्रबोध को उपदेश देते । उस प्रसंग में वे हमेशा कहा करते कि काशी के विश्वनाथ का दर्शन करने पर महान पुण्य की प्राप्ति होती है । प्रबोध के मन में विश्वनाथ का दर्शन करने की तीव्र इच्छा हुई और उसने गुरु से अनुमति माँगी । जीवानन्द ने बडी प्रसन्नतापूर्वक प्रबोध को काशी जाकर आने की आज्ञा दी और उसके मस्तक पर हाथ रखकर आशीर्वाद भी दिया ।

प्रबोध तीर्थयात्रा के लिए निकल पड़ा । कई दिन तक चलते रहने के बाद प्रबोध का एक जूता टूट गया । प्रबोध ने देखा, कुछ ही दूर पर बरगद के नीचे बैठा एक आदमी जूते सीं रहा है । प्रबोध उसके पास गया और अपना जूता उसे थमाकर सीं देने का अनुरोध किया ।

उस चर्मकार का नाम देवीदास था ।

प्रबोध का जूता सींते हुए उसने पूछा, "भैया जी, बताइए, आप कहाँ से आये हैं और कहाँ जा रहे हैं ?"

"मैं कौमुदी राज्य से आया हूँ और अब काशी विश्वनाथ के दर्शन के लिए जा रहा हूँ।" प्रबोध ने बताया ।

प्रबोध का जवाब सुनकर देवीदास की आँखें चमक उठीं । वह उत्साह में आकर बोला, "काशी विश्वनाथ के दर्शन करना क्या मामूली बात है ? आप तो सचमुच ही बड़े भाग्यवान हैं ।"

जब जूता सिल गया तो प्रबोध ने पहन लिया और देवीदास को चांदी का एक सिक्का देने

प्रतापसिंह सिसोदिया

लगा ।

देवीदास ने सिक्का नहीं लिया, बोला, "भैया जी, मेरा नाम देवीदास है । आप काशी में विश्वनाथ जी का दर्शन करने के बाद मेरा नाम लेकर यह सिक्का कृपा करके हुंडी में डाल देना ।"

प्रबोध ने हामी भरी । वह यह बात भूल न जाये, इसलिए उसने सिक्के को चादर के छोर में बाँध लिया और ईशस्मरण करता हुआ अपने रास्ते चल पड़ा ।

प्रबोध रास्ते में पड़े एक जंगल से होकर गुज़र रहा था कि अग्निशिख नाम का एक डाकू घोड़े पर उसके सामने आकर रुक गया और गरज कर बोला, "तुम्हारे पास जो भी धन है, यहाँ पर रख दो !"

प्रबोध अपने दोनों तरफ़ के मार्ग-व्यय के लिए सौ सिक्के साथ लाया था । वे उसने डाकू के हाथ में रख दिये । डाकू अग्निशिख ने देखा कि प्रबोध की चादर के छोर में गाँठ लगी है । अग्निशिख ने ललकार कर पूछा, "सच सच बता दो तुम्हारी चादर के छोर की गाँठ में क्या है ? क्या स्वर्ण है ?"

प्रबोध ने चादर की गाँठ खोलकर चांदी का सिक्का बाहर निकाला और अग्निशिख को दिखाकर बोला, "भाई मेहरबानी करके यह मत माँगो । एक चर्मकार ने इसे काशी विश्वनाथ की हुंडी में डालने के लिए मेरे हाथ दिया है ।"

यह जवाब सुनकर अग्निशिख सोच में पड़ गया । "जूता सीने का काम करनेवाला एक मन्द भागी गरीब आदमी भक्ति भाव से भगवान को चाँदी का एक सिक्का भेंट चढ़ा रहा है और एक मैं हूँ ?"

अग्निशिख ने सौ सिक्के प्रबोध के हाथ में लौटाकर कहा, "मेरा नाम अग्निशिख है । तुम मेरे नाम से यह धन काशी विश्वनाथ की हुंडी में डाल देना ।" यह कहकर वह अपने रास्ते चला गया ।

इस घटना के एक महीने बाद तक प्रबोध यात्रा करता रहा । एक दिन वह घने जंगल से होकर गुज़र रहा था । उस जंगल में रुधिरवर्ण नाम का एक ब्रह्मराक्षस था । उसने प्रबोध को देखते ही बड़ी ज़ोर से हुंकार की और उसे पकड़

लिया ।

प्रबोध डर के मारे थर-थर काँप उठा, बोला, "हे राक्षस श्रेष्ठ, मेरी एक विनती है। मैं काशी विश्वनाथ के दर्शन करने निकला हूँ। अगर मेरा यही एक कार्य हो तो भी मैं तुम्हारा ग्रास बनने में संकोच न करता। पर रास्ते में मिले एक चर्मकार ने मुझे भगवान को अर्पित करने के लिए चांदी का एक सिक्का दिया है। एक डाकू ने मेरा जो धन लूटा, उसे मुझे वापस कर भगवान को चढ़ा देने का अनुरोध किया। अब अगर आप मुझे मार कर अपना आहार बना लेते हैं तो मैं ये दोनों पुण्य कार्य नहीं कर पाऊँगा और पाप का भागी बन जाऊँगा। कृपा करके मेरे प्राण मत लो। मैं वचन देता हूँ, लौटती यात्रा में आपका आहार बनने में तनिक भी संकोच नहीं करूँगा। मेरी बात पर विश्वास करो ।"

रुधिरवर्ण को प्रबोध की बातों में सत्यता का विश्वास हो गया। उसने लौटती यात्रा का वचन लेकर प्रबोध को छोड़ दिया ।

इसके उपरान्त कुछ समय और यात्रा करके आख़िर प्रबोध काशी पहुँचा । वहाँ उसने विश्वनाथ के दर्शन किये और देवीदास से प्राप्त चांदी के सिक्के को तथा अग्निशिख से प्राप्त सिक्कों में से कुछ सिक्कों को विश्वनाथ को भेंट चढ़ा दिया ।

लौटती यात्रा में प्रबोध ब्रह्मराक्षस रुधिरवर्ण का आहार बनने के लिए घने जंगल में पहुँचा। वहाँ उसे एक भील दिखाई दिया। प्रबोध को बड़ा आश्चर्य हुआ कि ब्रह्मराक्षस के आवास स्थल इस बन में एक भील निर्भय संचरण कर रहा है ।

और भी अधिक आश्चर्य की बात यह हुई। भील बड़े आदर से प्रबोध के पास आया और भक्तिभाव से सिर झुका कर उसे प्रणाम कर बोला, "महानुभाव, अचरज न करें। मैं ही वह ब्रह्मराक्षस रुधिरवर्ण हूँ। मैंने आपको मार कर अपना आहार नहीं बनाया और आपको काशी विश्वनाथ के दर्शन के लिए छोड़ दिया, यह उसी का पुण्य-फल है कि मैंने सब जन्मों में श्रेष्ठ मानव-जन्म को प्राप्त कर लिया ।"

प्रबोध रुधिरवर्ण को आशीर्वाद देकर आगे

बढ़ा। एक स्थल पर उसे कुछ आदिवासी वन्य लोग दिखाई दिये। वे ढफली लेकर बजाते हुए कुछ गा रहे थे। प्रबोध ने सोचा कि वे बनवासी हैं और एक जगह इकट्ठा होकर कोई उत्सव मना रहे हैं।

उस सारी भीड़ के बीच एक व्यक्ति बाँसों से बने और फूलों से सजे एक ऊँचे आसन पर ठाठ से बैठा हुआ था। उसके मस्तक पर श्वेत सुगन्धित फूलों से बना एक मुकुट सुशोभित था।

प्रबोध को देखते ही वह उठकर खड़ा होगया और पास आकर प्रणाम करके बोला, "स्वामी, मैं अग्निशिख हूँ। इस बन के निवासियों ने अपने रिवाज़ के अनुसार राजा का चुनाव करने के लिए एक तोता उड़ाया। वह उड़ कर मेरे सिर पर आ बैठा। अब जैसी कि इनकी रस्म है, इन्होंने मुझे अपना राजा बनाया है। यह सब आपकी कृपा और श्री काशी विश्वनाथ के द्वारा दिया गया पुण्य-फल है। आप मेरी बात पर विश्वास कीजिए।"

प्रबोध को बड़ी प्रसन्नता हुई। वह एक दिन के लिए अग्निशिख का अतिथि रह कर थोड़ी दूर यात्रा करने के बाद चर्मकार देवीदास के गाँव पहुँचा। वहाँ पर एक दूकान थी और उस दूकान पर क़ीमती वस्त्र धारण किये एक पुरुष बैठा था।

प्रबोध ने उसके निकट जाकर कहा, "महाशय, यहाँ पर देवीदास नाम का एक चर्मकार रहा करता था। क्या आप उसे जानते हैं?"

दूसरे ही क्षण वह व्यक्ति प्रबोध के पैरों पर
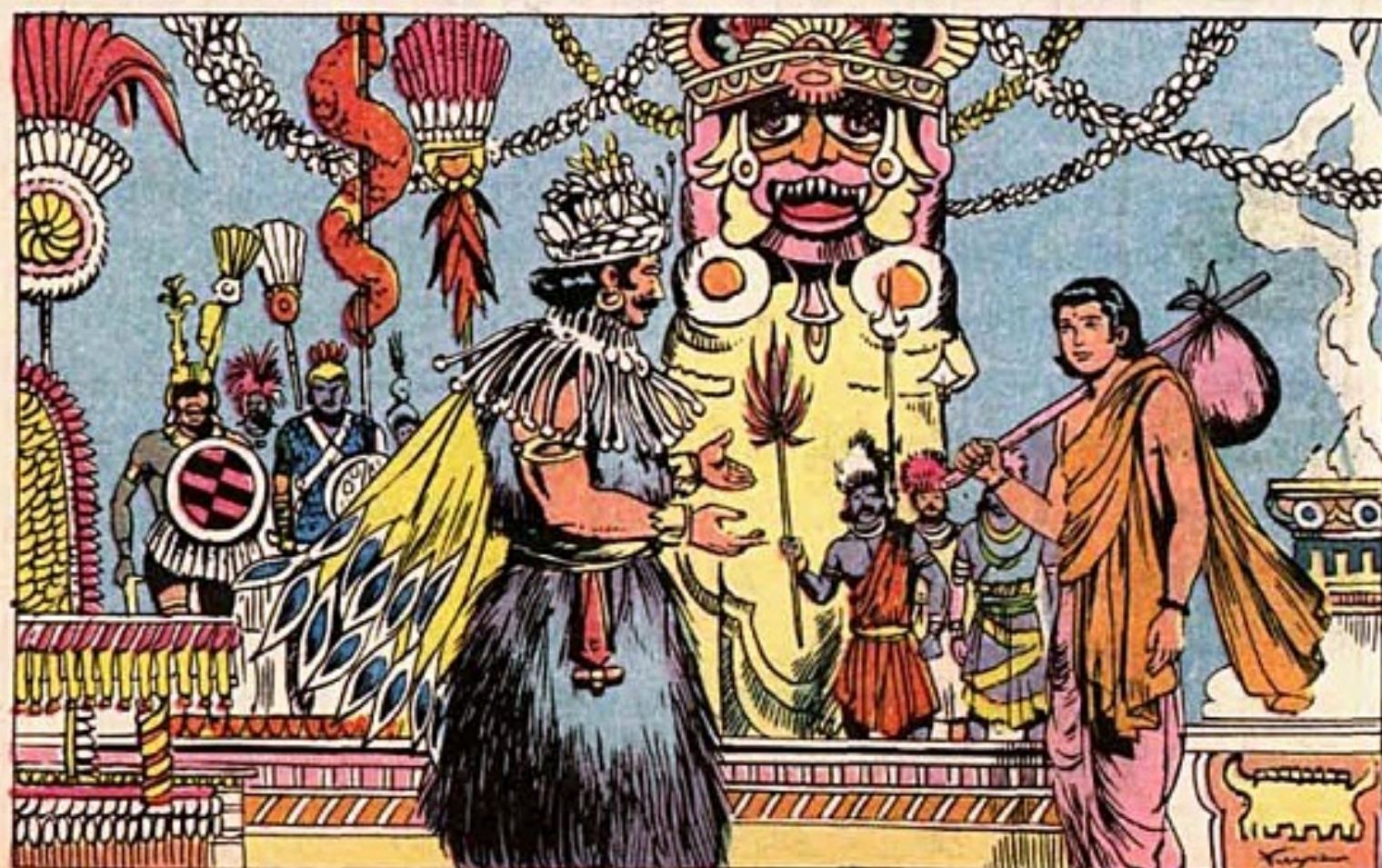
गिर पड़ा और प्रणाम करके बोला, ''स्वामी, वह देवीदास मैं ही हूँ। कुछ दिन पहले इस देश के राजा इधर से गुज़रे। मेरी जूतों की कारीगरी देखकर उन्होंने मुझसे जूता ख़रीद लिया। उसी दिन से मेरी भाग्य-रेखा बदल गयी। इस समय राज्य के सभी प्रमुख व्यक्ति मुझसे ही जूते ख़रीदते हैं। यह सब आपकी कृपा का फल है और काशी विश्वनाथ द्वारा प्रदत्त पुण्य-फल है

प्रबोध को इस बात का सन्तोष हुआ कि इन तीनों व्यक्तियों को तत्काल पुण्य-फल प्राप्त हुआ और उनकी दशा बदल गयी।

उसके मन में विचार आया कि उसने तो स्वयं जाकर काशी विश्वनाथ के दर्शन किये हैं, पर उसे तो अब तक किसी भी प्रकार के पुण्य-फल की प्राप्ति नहीं हुई। क्या उसे शांतिवन में जाकर गुरु की शुश्रूषा करते हुए स्वाध्याय में लगे रह कर पूर्ववत् अपना जीवन बिताना होगा ?

शांतिवन में लौटकर प्रबोध ने गुरु जीवानन्द को सारा वृत्तान्त सुनाया और उनके सामने सरल भाव से अपनी शंका रखी।

जीवानन्द ने ध्यानपूर्वक सारी बातें सुनीं, फिर पूछा, ''प्रबोध, तुम राह-खर्च के लिए अपने साथ थोड़ा धन ले गये थे। उसे डाकू अग्निशिख ने लूट लिया, फिर काशी पहुँचने तक और वहाँ भी तुंमने अपनी भूख-प्यास कैसे मिटायी ?''

''गुरुदेव, काशी पहुँचने तक तो मैंने अग्निशिख से प्राप्त धन में से कुछ भी व्यय नहीं किया। जंगलों से गुज़रते वक्त मैं कन्द-मूल पर
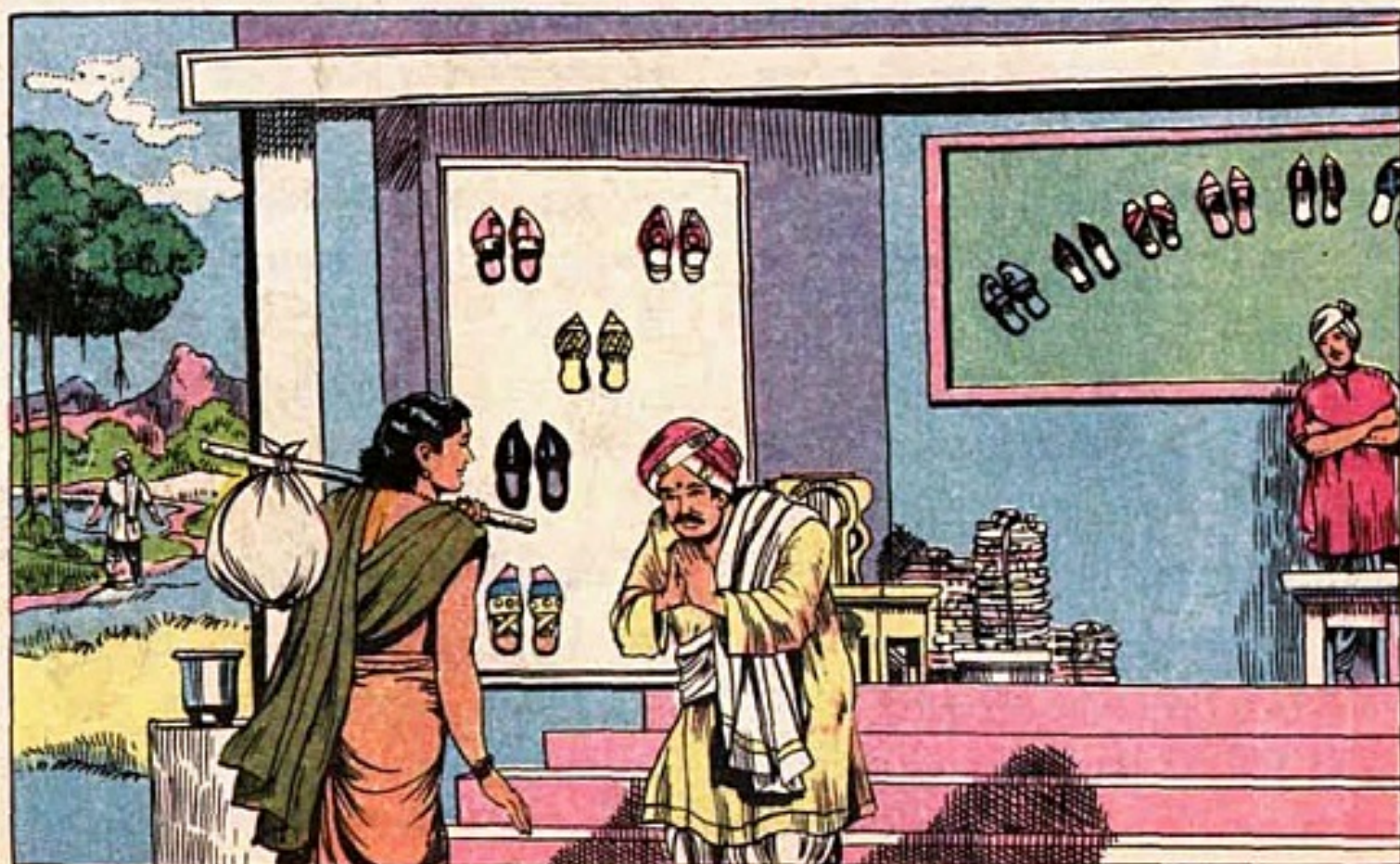
गुज़ारा कर लेता और गाँवों से निकलता तो किसी गृहस्थ का आतिथ्य प्राप्त हो जाता । परन्तु काशी में प्रवेश करने के बाद मैंने उस घन में से थोड़ा सा धन अवश्य खर्च किया ।'' प्रबोध ने जवाब दिया ।

''ऐसा क्यों हुआ ?'' जीवानन्द ने पुनः प्रश्न किया ।

''गरुदेव, काशी में कुछ तीर्थयात्रियों से मेरी मुलाक़ात हुई । वे लोग एक धर्मशाला छोड़कर दूसरी धर्मशाला में जा रहे थे । जब मैंने उनसे इसका कारण पूछा तो उन्होंने कहा कि इस धर्मशाला में अच्छा खाना नहीं मिलता है; दूसरी धर्मशाला में कुछ पैसा अवश्य लेते हैं, लेकिन भोजन आदि की श्रेष्ठ व्यवस्था कर देते हैं । इसलिए उन्होंने मुझसे साथ चलने का आग्रह किया । उनका प्रोत्साहन पाकर मैं भी उन लोगों के साथ चल पड़ा । मुझे उस धर्मशाला के मालिक को थोड़ा सा धन चुकाना पड़ा, इसलिए अग्निशिख से प्राप्त सौ सिक्कों में से कुछ सिक्के खर्च होगये ।'' प्रबोध ने सारी बात सच-सच बता दी ।

जीवानन्द ने मन्द स्मित से कहा, ''प्रबोध, यहीं तुमसे भूल होगयी । अग्निशिख डाकू था । लूटमार करना उसका पेशा था । जब उसने तुम्हारा धन लूट लिया, तो वह उसका धन होगया । उस धन को उसने अपनी इच्छा से विश्वनाथ की हुंडी में डालने का अनुरोध किया और तुम्हें सौंप दिया । इस तरह तुमने पराये धन को खर्च किया । तुम्हें यह दुख हो रहा है कि उन तीनों को जो पुण्य-फल प्राप्त हुआ है, वह तुम्हें प्राप्त नहीं हुआ । यह तुम्हारी कितनी बड़ी भूल है !''

''भूल ? गुरुदेव, वह कैसे ? कृपा कर मुझे सविस्तार समझाइये !'' प्रबोध ने गुरु से विनती की ।

जीवानन्द कुछ क्षण चुप रहे, फिर अत्यन्त वात्सल्यपूर्वक उसके कंधे पर थपकी दे कर बोले, ''वृक्ष के नीचे धूप-वर्षा का कष्ट सहकर जूते सीने वाला देवीदास अत्यन्त ग़रीब मनुष्य होना चाहिए । इसलिए उसका दिया दान तुरन्त फली भूत हुआ । पुण्य-फल पाकर वह दारिद्र्य से मुक्त हुआ ।

अब अग्निशिख को लें। वह राहगीरों को लूट कर निकृष्ट जीवन बिताता था। माँगने पर अगर कोई धन नहीं देता था तो वह उसे मारने में भी नहीं चूकता था। अगर उसे पुण्य का फल तुरन्त प्राप्त न होता तो वह और भी जाने कितने लोगों को लूटता और न जाने कितनों को परलोक की राह दिखाता। इसलिए वह डाकू से राजा बन गया।

अब रही ब्रह्मराक्षस रुधिरवर्ण की बात! उसका मुख्य कर्म मनुष्य को अपना आहार बनाना था। दृष्टि में पड़े किसी भी मनुष्य को वह छोड़ता नहीं, इसलिए उसे भी तत्काल पुण्य-फल मिलना एक आवश्यकता थी। ऐसा न हो तो और भी अनेक मनुष्य उसका शिकार बन सकते थे। बात समझ में आयी कि उन्हें तुरन्त पुण्य-फल क्यों मिला?"

"हाँ, गुरुदेव, यह बात तो समझ में आगयी है, लेकिन मेरा एक सन्देह है। मैंने अत्यन्त श्रमसाध्य मार्ग को अनेक कष्ट झेलकर पूरा किया और काशी पहुँचा और भगवान विश्वनाथ के दर्शन किये। क्या मैं थोड़े भी पुण्य-फल का अधिकारी नहीं हूँ?" प्रबोध ने कातर स्वर में पूछा।

"क्यों नहीं हो? लेकिन तुम्हें चर्मकार, डाकू और ब्रह्मराक्षस की तरह तत्क्षण पुण्य-फल पाने की आवश्यकता नहीं है। तुम्हें गरीबी का कष्ट नहीं है। दूसरों को हानि पहुँचाने की तुम्हारी प्रकृति नहीं है। अभी तुम विद्यार्थी हो। भविष्य में तुम्हें विश्वनाथ के दर्शन करने का फल अवश्य प्राप्त होगा।" इस प्रकार प्रबोध का समाधान कर जीवानन्द ने उसे आशीर्वाद दिया।

कुछ समय बाद स्वामी जीवानन्द की वाणी फलीभूत हुई। प्रबोध ने समस्त शास्त्रों का अध्ययन कर अपार यश प्राप्त किया। लोगो का विश्वास था कि कौमुदी राज्य में उसके तुल्य कोई पंडित नहीं है। प्रबोध की ख्याति सुनकर वहाँ के राजा ने प्रबोध का स्वागत किया और उसे राजगुरु का पद देकर सबका सम्माननीय बनाया

आधिक्य

रामपुर गाँव में राम का एक सुन्दर मन्दिर था। वह काफ़ी जीर्ण हो चुका था। ग्रामवासियों ने उस मन्दिर की मरम्मत कराने का संकल्प किया। गाँव के मुखिया गोविन्दराज धर्मनिष्ठ व्यक्ति थे। उन्होंने सुझाव दिया, "हम लोग एक छोटे से संगीत-समारोह का आयोजन करते हैं। उस समारोह में आनेवाले श्रोताओं से हम थोड़ी सी धनराशि चन्दे के रूप में लेंगे।"

उस गाँव में दो संगीतज्ञ भी थे—सारंगपाणि और सोमदत्त। इन दोनों को ही शास्त्रीय संगीत का अच्छा ज्ञान था। समारोह की सफलता के लिए उन दोनों को निमंत्रित किया गया और यह निर्णय भी किया गया कि सम्मानार्थ दोनों को एक-एक सौ रुपये की राशि प्रदान की जाये। सरंगपाणि के सामने जब यह बात आयी उसने इस निर्णय को सादर स्वीकार कर लिया।

जब सोमदत्त से कहा गया तो उसने कहा, "वाह, यह भी कोई बात है ? क्या सारंगपाणि संगीत में मेरी तुलना कर सकता है ? मेरी योग्यता के आधिक्य को जताने के लिए यह आवश्यक है कि उसे जो पारिश्रमिक दिया जाये, उससे एक रुपया अधिक मुझे दिया जाये।"

गोविन्दराज मुखिया ने सोमदत्त की बात मान ली। एक सप्ताह बाद संगीत-समारोह आरंभ हुआ। समारोह की समाप्ति पर प्रेक्षकों को सम्बोधित कर गोविन्दराज ने कहा, "भाइयो, सोमदत्त ने यह शर्त रखी थी कि सारंगपाणि को जो पारितोषिक दिया जाये, उससे एक रुपया अधिक की राशि उसे देदी जाये, श्रीराम मन्दिर को भगवान का कार्य मानकर सारंगपाणि ने धन लेना अस्वीकार कर दिया है। मैं आधिक्य के रूप में सोमदत्त को एक रुपया प्रदान करता हूँ।"

सोमदत्त कुछ बोल न सका। उसने अपना मस्तक झुका लिया और गोविन्दराज से एक रुपया ग्रहण किया।

ज्वालाद्वीप

धवलगिरि राज्य नर्मदा नदी के किनारे बसा हुआ था। इस समय यहाँ राजा तारकेश्वर का शासन था। राजा के दो पुत्र थे-शूरसेन और चित्रसेन। ज्येष्ठ शूरसेन पच्चीस वर्ष का हो चुका था और कनिष्ठ चित्रसेन की आयु अभी अट्ठारह वर्ष की थी।

एक रोज़ सुबह ही सुबह दोनों राजकुमारों ने अपने अनुचरों को साथ लिया और शिकार खेलने के लिए जंगल में निकल गये। अभी वे जंगल में कुछ ही दूर आगे बढ़े थे कि उन्हें हिरनों का एक झुंड दिखाई दिया।

घोड़ों पर सवार दोनों राजकुमार हिरनों का पीछा करते हुए उन पर बाण चलाने लगे। वे इतनी रफ़्तार से आगे बढ़ रहे थे कि उनके अनुचर बहुत पीछे छूट गये और वे जंगल में बहुत दूर निकल गये।

अचानक उन्हें एक झाड़ी के पीछे शेर की दहाड़ सुनाई दी। दोनों राजकुमार उस गर्जन की दिशा में मुड़ गये और बाणों का प्रहार करने के लिए तैयार हुए। तभी दो सिंहों ने उछलकर उन पर हमला कर दिया। सिंहों को देखते ही घोड़े बिदक कर पीछे मुड़े और तेज़ गति से अंधाधुंध भागने लगे।

कुछ दूर निकल जाने पर छोटे राजकुमार चित्रसेन ने अपने घोड़े की लगाम खींची, पर घोड़ा तब भी न रुका और तीर की तरह पेड़ों के बीच से भागता रहा।

कुछ देर में वह एक पहाड़ी प्रदेश में पहुँच कर रुक गया। उसके मुँह से फेन निकल रहा था। आख़िर गिर कर उसने दम तोड़ दिया।

चित्रसेन थक कर चूर होगया था । उसने अपने बड़े भाई की खोज में चारों तरफ़ दृष्टि दौड़ायी, पर चारों तरफ़ भयानक सुनसान था। राजकुमार समझ गया कि वह अपने अनुचरों और भाई से अलग हो जंगल में बहुत दूर निकल आया है ।

उस पूरे इलाके में ऊँचे-घने वृक्ष थे, जिसके कारण अंधेरा छाया हुआ था । वृक्षों की टहनियों पर बन्दर उछल-कूद रहे थे । तरह-तरह के पक्षियों की आवाज़ें आ रही थीं और बड़े-बड़े साँप डालों से लटक रहे थे ।

इस पूरे प्रदेश की भयावहता के बीच चित्रसेन एकाकी और भयभीत खड़ा था । वह समझ गया कि वह न केवल अपने परिजनों से दूर निकल आया है, बल्कि यह इलाका मानव की पहुँच से भी परे है ।

घोड़ा मर चुका था । अब धवलगिरि नगर में उसे पैदल जाना होगा । उसे यह भी पता नहीं था कि उसका अपना नगर किस दिशा में है !

चित्रसेन अपनी इस असहाय हालत पर दुखी होता हुआ वहाँ से चल पड़ा । जंगल में कुछ दूर आगे बढ़ने के बाद उसे एक पहाड़ दिखाई दिया । उस पहाड़ की तलहटी में एक छोटा सा झरना बह रहा था । झरने का स्वच्छ जल देखते ही उसे अपनी प्यास का स्मरण हो आया । वह लपक कर वहाँ पहुँचा और उसने झरने के शीतल, मीठे जल से अपनी प्यास बुझायी ।

पानी पीकर चीत्रसेन ने कुछ देर विश्राम किया । फिर झरने के किनारे बैठकर वह अपने भावी कार्यक्रम के बारे में विचार करने लगा । वह सोचने लगा कि शायद उसका भाई शूरसेन भी सिंहों के जबड़ों से बचकर भाग निकला होगा । हो सकता है उसका घोड़ा भी इसी प्रदेश में आया हो और शूरसेन इस घने जंगल में उसे ढूँढ़ता हुआ भटक रहा हो !

इस विचार के आते ही चित्रसेन उठ खड़ा हुआ और ज़ोर से चिल्ला उठा, "भाई शूरसेन, भाई शूरसेन !"

चित्रसेन की पुकार जंगल और पहाड़ की गुफ़ाओं में गूँजकर वापस लौट आयी । तभी झरने के उस पार की एक गुफ़ा से उसे ये शब्द

सुनाई दिये, "तुम कौन हो ? मुझे इस प्रदेश में पहली बार मानव का कंठ-स्वर सुनाई दे रहा है ? बेटा, तुम भाग्यशाली हो ! आओ, मेरे पास चले आओ !"

गुफ़ा से आ रही इस आवाज़ को सुनकर चित्रसेन चौंक उठा । फिर हिम्मत बाँधकर कुछ कठोर स्वर में बोला, "तुम कौन हो ? राक्षस हो या नरमांस-भक्षी किरात हो ? गुफ़ा से बाहर निकल आओ ! मैं तुम्हें अपनी तलवार के घाट उतारूँगा ।"

चित्रसेन की बातें समाप्त न हो पायी थीं कि गुफ़ा के भीतर कोई विचित्र और मधुर हँसी हँसा । फिर चित्रसेन ने गुफावासी को यह कहते सुना, "बेटा, तुम अत्यन्त साहसी हो । मैं तुम जैसे किसी साहसी व्यक्ति की प्रतीक्षा में हूँ । मैं न किरात हूँ न राक्षस और न तो कोई साधारण मनुष्य ही हूँ । मैं एक सिद्ध पुरुष हूँ । कठिन तपस्या करके मैंने कुछ प्राप्त किया है । वह अनमोल वस्तु मैं तुम्हें देना चाहता हूँ । तुम्हारे जैसे साहसी और वीरयुवक की मैं प्रतीक्षा कर रहा था । यह तुम्हारा सौभाग्य था कि तुम सही वक्त पर यहाँ पहुँच गये हो । यह वस्तु तुम ग्रहण करो, आओ, मेरे पास आओ !"

चित्रसेन ने सोचा, अगर उस गुफ़ा में राक्षस है तो उससे बचकर निकलना असंभव है । इसलिए मैं उससे लड़ूँगा और अपने क्षात्रधर्म का पालन करूँगा । अगर गुफ़ा में सचमुच ही किसी सिद्ध का वास है तब तो लाभ ही लाभ है । मैं उनके दर्शन कर अपना जीवन सफल करूँगा । इस प्रकार दोनों तरफ़ से मैं अपना कर्तव्य करने वाला साबित हो जाऊँगा । क्षत्रिय को विपत्तियों से जूझने में कभी पीछे नहीं हटना चाहिए ।"

चित्रसेन ने कुछ निर्णय कर म्यान से अपनी तलवार निकाली और घुटनों तक पानीवाले उस झरने में उतर कर उस पार पहुँचा । पहाड़ के उस हिस्से में अनेक गुफ़ाओं के मुख दिखाई दे रहे थे । इसलिए चित्रसेन समझ नहीं पाया कि उसे किस गुफ़ा की तरफ़ बढ़ना है ! वह एक गुफ़ा के निकट गया और भीतर झाँक कर देखने लगा । तभी उसे पास की एक गुफ़ा से ये शब्द सुनाई दिये, "बेटा, डरो मत । इधर मेरे पास

चले आओ !"

चित्रसेन ने कसकर अपनी तलवार पकड़ ली और उस गुफ़ा के सामने पहुँचा, जहाँ से आवाज़ आयी थी। उसने गुफ़ा के भीतर झाँक कर देखा तो उसे एक सिद्ध पुरुष का दर्शन हुआ। उनकी दाढ़ी एवं सिर के बाल श्वेत थे। वे गुफ़ा के बीच पत्थर की एक ऊँची लेकिन समतल शिला पर बैठे हुए थे।

गुफ़ा के ऊपर पीछे की तरफ़ के हिस्से में शिला का थोड़ा सा भाग हटा उठा था और छत में कुछ छिद्र थे, इस कारण सूर्य की कांति छन-छन कर अन्दर आ रही थी और गुफ़ा में प्रकाश ही प्रकाश था।

वृद्ध, तेजस्वी सिद्धपुरुष को देखकर चित्रसेन को अपने व्यवहार पर खेद हुआ। उसने तलवार म्यान में रखी और सिद्ध के निकट जाकर उन्हें प्रणाम किया, फिर विनयपूर्वक बोला, "महात्मा, आप मेरी धृष्ठता को क्षमा करें

सिद्ध ने मन्द हास कर कहा, "बेटा, तुम उत्तम क्षत्रिय प्रतीत होते हो। मैंने साठ वर्ष तक इस स्थान पर तपस्या की है और उसका फल भी प्राप्त किया है। पर अब मेरा समय आगया है। अपने तपस्या-सिद्ध फल को अनुभव करने की शक्ति मेरे अन्दर नहीं है। जो मुझे मिला है, उसे साधने में मेरी आयु क्षीण होगयी है।

मैं आज मध्यरात्रि में अष्टमी के चंद्र के अस्त होते ही मृत्यु का वरण करूँगा। मेरे पास एक अपूर्व वस्तु है। मेरी बड़ी इच्छा थी कि उसे किसी योग्य पात्र को सौंप सकूँ और सुखपूर्वक प्रयाण करूँ। आज तुम्हें तुम्हारा सौभाग्य मेरे पास खींच लाया है। लो, यही वह वस्तु है, जो मैं तुम्हें देना चाहता हूँ।" यह कह कर सिद्ध महात्मा ने अपनी बगल में रखी बाँस की टोकरी चित्रसेन के हाथों में थमा दी।

चित्रसेन ने टोकरी लेकर महात्मा को फिर से प्रणाम किया और वह बड़ी उत्कंठा से उसके ढक्कन को खोलने लगा। पर सिद्ध ने पास रखे अपने दण्ड से टोकरी के ढक्कन को कसकर दबा दिया, फिर बोले, "बेटा, तुम जल्दी मत करो। यह स्थान टोकरी का ढक्कन खोलने का नहीं है। तुम इस ढक्कन को उस स्थान पर खोलना, जहाँ तुम अपना स्थायी निवास-स्थान बनाना चाहते

हो। वह तुम्हारे लिए हितकारी होगा। तुम मेरी बातों को अच्छी तरह से याद रखो, ताकि तुम अपने कार्य में सफल हो सके। क्योंकि लोग जल्दबाजी में आकर कभी कभी हाथ आई सफलता से वंचित रह जाते हैं ! समझें।"

राजकुमार चित्रसेन ने सिद्ध के आदेश पर स्वीकृतिसूचक सिर हिलाया, फिर विनीत स्वर में बोला, "महात्मा, आपकी इस कृपा के लिए मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। आप मुझसे जो भी सेवा-शुश्रूषा चाहते हैं, मैं करने के लिए प्रस्तुत हूँ।"

चित्रसेन की बालसुलभ बात सुनकर सिद्ध के मुख पर हास्य छागया। वे बड़े मधुर स्वर में बोले, "बेटा, तुम्हारी नम्रता और भक्तिभावना से मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है। मैं अब चन्द घड़ियों का मेहमान हूँ। ऐसी स्थिति में तुम मेरी क्या सेवा कर सकते हो ? पर मैं तुमसे एक छोटा-सा काम लेना चाहता हूँ। तुम अब यहाँ से चले जा रहे हो। गुफ़ा से बाहर निकलने के बाद तुम गुफ़ा की पूर्वी दिशा में जो कोणाकृति वाली एक शिला है, उसे नीचे खींच देना। बस यही एक प्रत्युपकार तुम मेरे लिए कर सकते हो"

चित्रसेन ने सिद्ध को प्रणाम किया और गुफ़ा से बाहर निकला। जैसाकि सिद्ध ने बताया था, उसने पूरब की उस कोणाकृति वाली शिला को दोनों हाथों से कस कर पकड़ लिया और नीचे खींच दिया।

दूसरे ही क्षण भयंकर ध्वनि हुई और सारा पहाड़ उस आवाज़ से गूँज उठा। वह शिला गुफ़ा के मुखभाग पर आकर इस तरह ढक्कन की तरह लग गयी कि उस गुफ़ा के अस्तित्व का कोई निशान न रहा।

चित्रसेन कुछ देर अभिभूत-सा वहाँ खड़ा रहा। फिर वह धीरे-धीरे झरने की तरफ़ बढ़ा। उसने झरने को पार किया और बन में प्रवेश कर आगे चलने लगा। उसे कुछ मालूम नहीं था कि राजधानी पहुँचने के लिए किस दिशा से आगे बढ़ना चाहिए। फिर भी, वह जिधर देखता कि मार्ग कुछ सुगम है, उधर बढ़ जाता।

घने वृक्षों के नीचे से निकलना उसके लिए कभी-कभी कठिन हो जाता। कुछ देर तक

चलते रहने के बाद उसने अनुभव किया कि अब सूरज के डूबने में देर नहीं है। उसे भूख भी लग रही थी।

थका हुआ चित्रसेन बन में कुछ दूर और चला। उसने देखा, अब भूमि समतल नहीं है और धीरे-धीरे ऊँची होती जा रही है। सायास चढ़ता हुआ वह एक ऐसे प्रदेश में पहुँचा, जहाँ पर पेड़ नहीं थे। लेटकर उसने आँखें मूंद लीं। तभी उसे सिद्ध की दी हुई उस टोकरी की याद आयी। उसने उसे टटोला। चित्रसेन के मन में प्रबल इच्छा हुई कि वह इस टोकरी को खोल ले। वह सिद्ध की दी हुई उस अपूर्व अनमोल वस्तु के दर्शन करना चाहता था। वह सिद्ध की चेतावनी को पूरी तरह भूल गया।

चित्रसेन उठा और उसने बड़ी व्यग्रता से वह टोकरी उठा कर उसका ढक्कन खोल दिया। वह उसके भीतर झाँकने लगा। तत्काल उसकी आँखों में चकाचौंध हुई और क्षण भर के लिए उसकी आँखें बन्द हो गयीं।

क्षण भर बाद आँखें खोलकर वह देखता क्या है, उसके सामने आसमान को छूनेवाला एक भवन है और वह ऊँचे-ऊँचे पेड़ों से घिरा हुआ है।

इस अद्भुत दृश्य को देखकर चित्रसेन चित्रलिखित रह गया। दूसरे ही क्षण उसे सिद्ध की चेतावनी याद आयी। वह यह सोचकर दुखी होने लगा, "ओह! मैं भी कैसा मूर्ख हूँ! इस महारण्य के बीच यह दिव्य भवन मेरे किस काम का है? यह भवन अगर धवलगिरि में होता तो इसकी कैसी शोभा होती! मैंने अपनी
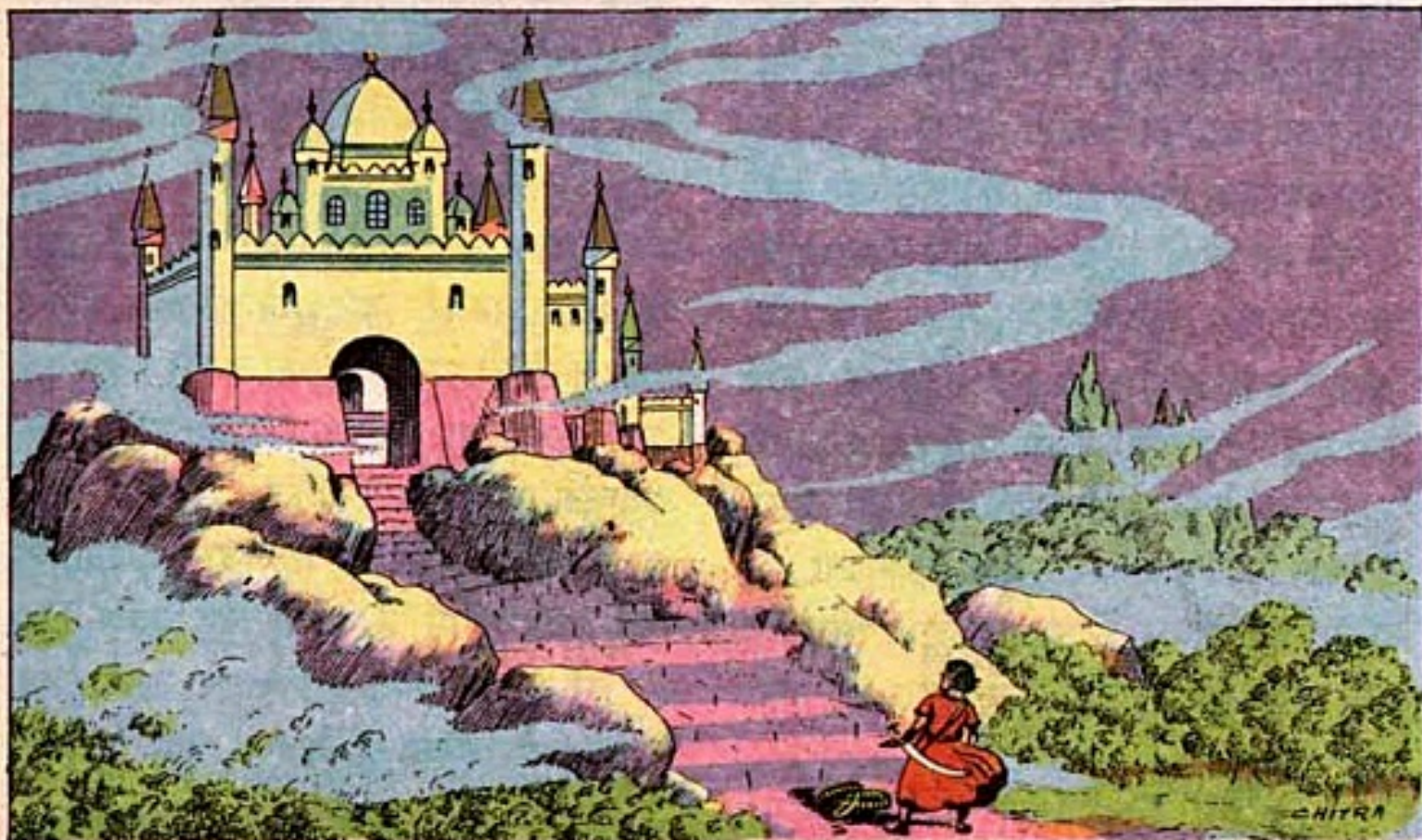
मूर्खता और जल्दीबाज़ी के कारण सिद्ध के उपकार को व्यर्थ कर दिया है ।"

तभी चित्रसेन को उस बन में हा-हा हू-हू की ध्वनि सुनाई दी । देखते-देखते ही सारा बन कम्पित होने लगा । वृक्ष इस तरह झूमने लगे, मानो तूफ़ान आया हो ।

चित्रसेन कुछ समझ नहीं सका कि क्या हो रहा है । तभी उसने देखा एक राक्षस अपने दोनों हाथों से रास्ते के वृक्षों को गिराता हुआ उसकी ओर बढ़ रहा है । चित्रसेन उठ खड़ा हुआ । उसने म्यान से तलवार खींच ली और राक्षस का सामना करने के लिए तत्पर होगया ।

राक्षस विकट अट्टहास करता हुआ चित्रसेन के निकट आया और गरज कर बोला, "अरे दुस्साहसी, तेरी इतनी हिम्मत ! इस उग्राक्ष को देखते ही मनुष्य डर के मारे दम तोड़ देता है और तू तलवार खींच कर मेरे सामने खड़ा हो रहा है ? ऐसा मनुष्य तो मैंने आज तक नहीं देखा ।"

यह कहकर उसने पीछे मुड़ कर देखा, फिर पूछा, "बता, क्या इस घरौंदे को तूने बनाया है ?"

"हाँ, मैंने ही बनाया है !" चित्रसेन ने अविचल स्वर में उत्तर दिया ।

उसका जवाब सुनकर राक्षस पुनः अट्टहास कर उठा । फिर डपट कर बोला, "क्या इस जंगल को तुम्हारे परदादा ने पानी सींचकर उगाया था ? तुमने इस स्थान पर मेरी अनुमति के बिना मकान कैसे बनाया ? जानते हो, यह जंगल उग्राक्ष का है । सावधान ! मैं अभी तुम्हें
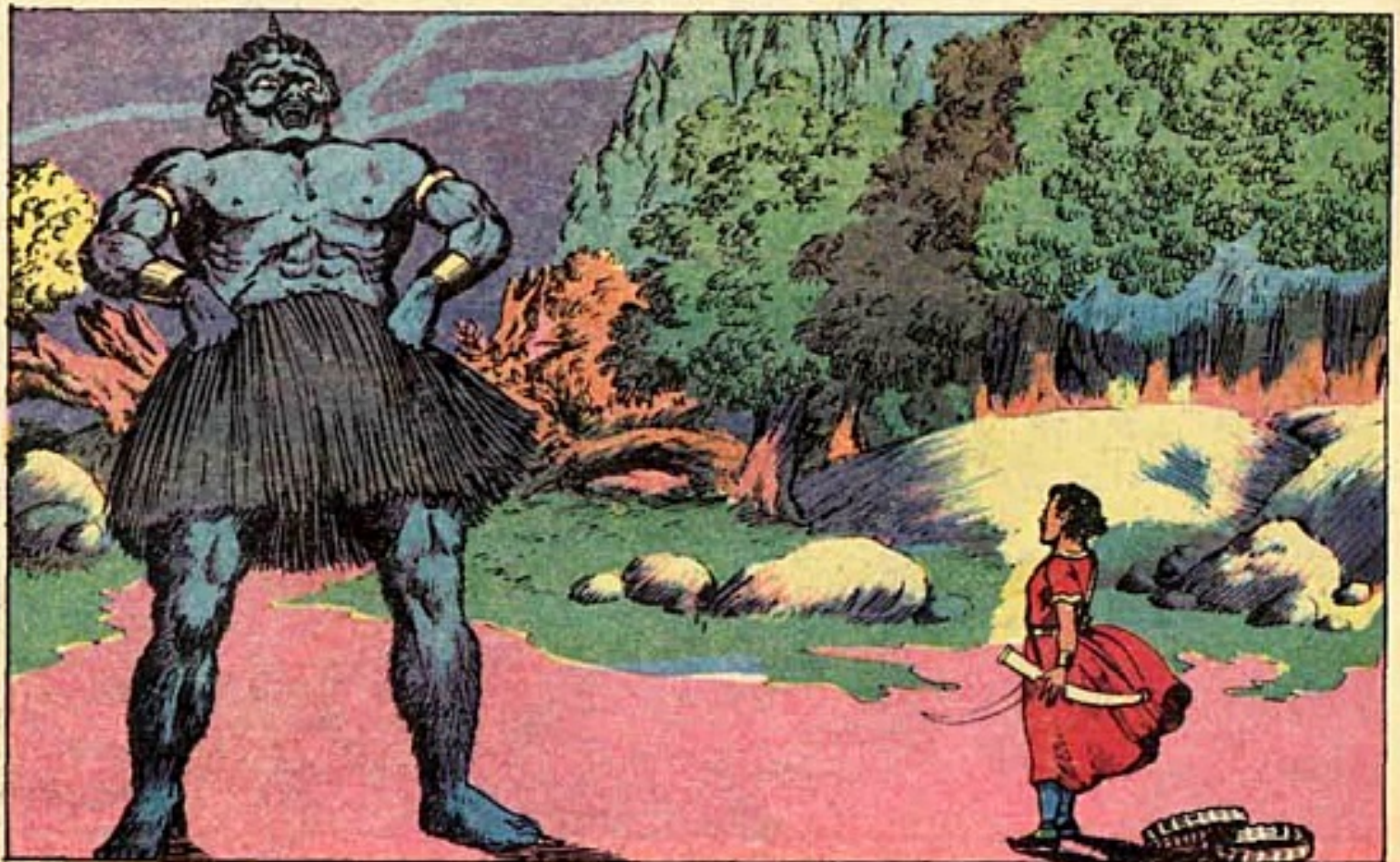
और तुम्हारे घर को पुलिन्दे की तरह एक साथ पहाड़ के उस पार फेंक दूँगा ।" यह कहकर राक्षस झुका और चित्रसेन को पकड़ने के लिए उद्यत हुआ ।

चित्रसेन राक्षस की पकड़ से बचकर बोला, "उग्राक्ष, जल्दीबाजी में न आओ ! अगर मैंने यहाँ एक भवन खड़ा कर लिया है तो इससे तुम्हारा क्या नुक़सान है ? अगर तुम चाहो तो मैं यह भवन तुम्हारे लिए छोड़कर यहाँ से चला जाऊँगा ।"

"ये सब चालाकी की बातें मत करो ! मेरे इस अरण्य में तुमने मेरा तिरस्कार करके यह महल बनाया है । फिर भी, मैं तुम्हें प्राणों की भिक्षा दे सकता हूँ, अगर तुम मेरी एक शर्त मान लो !" उग्राक्ष ने कहा ।

"कैसी शर्त ?" चित्रसेन ने पूछा ।

"तुम अपने इसी महल में सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करो, मुझे कोई आपत्ति नहीं है । पर तुम्हें अपनी संतानों में से ज्येष्ठ पुत्र को अट्ठारह वर्ष की उम्र में मुझे अर्पित करना होगा, बस यही मेरी शर्त है ।" उग्राक्ष ने कहा ।

राक्षस की शर्त चित्रसेन को बड़ी विचित्र लगी । वह सोचने लगा, अभी तो उसका विवाह भी नहीं हुआ है । आगे की कौन जाने, ऐसी हालत में राक्षस की शर्त को मान लेने में नुक़सान ही क्या है ? इस समय तो किसी तरह इसके चंगुल से प्राण बचें !

सब सोच-समझकर चित्रसेन ने राक्षस से कहा, "उग्राक्ष, मैं तुम्हारी शर्त स्वीकार करता हूँ । मेरा ज्येष्ठ पुत्र जब अट्ठारह वर्ष का होगा, तब तुम उसे बिना किसी बाधा के ले जा सकते हो।मैं क्षत्रिय हूँ । क्षत्रिय अगर किसी को वचन देता है तो उसका पालन अवश्य करता है । तुम मेरी बातों पर विश्वास करो ।"

चित्रसेन का जवाब सुनकर राक्षस फूला न समाया । वह बोला, "सुनो मैं तुम्हें प्राण-दान देता हूँ । पर याद रखो, तुम को अपने वचन का पालन करना होगा ।" और वह यह कह कर वहाँ से चला गया ।

(क्रमशः)

त्रुटि कहाँ ?

दृढ़व्रती विक्रमार्क वृक्ष के पास लौट आये । वृक्ष से शव उतारा और कंधे पर डालकर हमेशा की तरह चुपचाप श्मशान की तरफ़ चलने लगे । तब शव में वास करने वाले बेताल ने पूछा, ''राजन, अर्धरात्रि के समय इस भयावह श्मशान में आप जो यह श्रम उठा रहे हैं, वह आप अपनी स्वतंत्र बुद्धि से प्रेरित होकर उठा रहे हैं या किसी अन्य की प्रेरणा और प्रोत्साहन से ? बुजुर्गों की इस बात से तो आप भली भांति परिचित ही हैं कि परायों की बुद्धि कभी-कभी प्राणान्तक होती है । परन्तु विवेकशील व्यक्ति भी कभी-कभी इस बात को भूलकर अपनी बुद्धि का तिरस्कार कर बैठते हैं और उपहास का कारण बन जाते हैं । वे यह नहीं समझ पाते कि त्रुटि उनमें है या अन्यत्र कहीं । इसके उदाहरण के रूप में मैं आपको एक रोचक कहानी सुनाता हूँ । श्रम को भुलाने के लिए सुनिये !''

बेताल कथा

SANKAR

बेताल कहानी सुनाने लगाः

उन दिनों सुवर्ण देश पर राजा शशांक का शासन था। उनकी पत्नी सुनन्दा अत्यन्त रूपवती थी। राजा उसे अपने प्राणों के समान प्रेम करते थे। वह जो भी इच्छा करती, राजा उसे तुरन्त पूरा करते, भले ही उन्हें कितना भी श्रम और व्यय क्यों न करना पड़े।

रानी सुनन्दा के अन्दर वस्त्राभूषणों के प्रति विशेष आकर्षण था। उसके मन के अनुरूप वस्त्र-आभूषणों का प्रबन्ध हो सके, इसलिए राजा ने अनेक देशों से कुशल जुलाहों और सुनारों को बुलवाकर अपने राज-दरबार में रख लिया था। उनमें चन्दन नाम का एक जुलाहा और शोणक नाम का एक सुनार असाधारण कारीगर थे। वे न केवल सुवर्ण देश में, बल्कि आसपास के सभी राज्यों में अपनी कारीगरी के लिए प्रसिद्ध हो गये थे।

राजा शशांक हर वर्ष रानी का जन्मदिन अत्यन्त धूमधाम से मनाया करते थे। जन्मदिन के अवसर पर चन्दन रानी की वेशसज्जा तैयार करता और शोणक आभूषण बनाया करता था। वे दोनों एक बार जो नमूना बनाते, उसे फिर कभी दुहराते नहीं थे। राजमहल के लोग अक्सर कहा करते, ऐसी कुशल कारीगरी अन्य किसी मनुष्य के लिए संभव नहीं है।

राजा शशांक का एक अभिन्न मित्र था, नाम था सारंग। राजा जो भी निर्णय लेते, चाहे वह शासन से सम्बन्धित हो अथवा व्यक्तिगत, सारंग को उसकी जानकारी अवश्य देते। सारंग की विशेषता यह थी कि वह कभी अपना मुँह खोलकर कुछ जानने का प्रयत्न नहीं करता था। वह सिर्फ़ सिर हिलाकर चुप रह जाता था। मंत्री मकरन्द को यह बात बड़ी विचित्र लगती थी और वह अक्सर सारंग के इस आचरण पर आश्चर्य किया करता था।

एक दिन मंत्री मकरन्द ने राजा शशांक से पूछा, "महाराज, मेरे रहते हुए भी आप सारी महत्वपूर्ण बातें सारंग को सुनाया करते हैं, पर वे आपको कभी कोई सलाह नहीं देते हैं। फिर भी आप हमेशा उनसे परामर्श लेने का प्रयत्न किया करते हैं। इस बात का रहस्य मेरी समझ में नहीं आता। क्या मैं जान सकता हूँ कि इसका क्या

कारण है ?"

"मैं सारंग का मन अच्छी तरह जानता हूँ। जब उसे कोई बात सहन नहीं होती है, तभी वह अपना मुँह खोलता है। इसलिए उसका मत जानने के लिए शब्दों की विशेष आवश्यकता नहीं है। यही उसका स्वभाव है।" राजा ने उत्तर दिया।

कुछ दिन बाद रानी का जन्मदिन आया। चन्दन एवं शोणक ने हमेशा की तरह नये वस्त्र एवं आभूषण बनाये और उनकी कारीगरी पर अत्यन्त सन्तुष्ट होकर राजा ने उन्हें रानी के महल में भेज दिया। लेकिन रानी ने उन वस्तुओं को यह कहकर लौटा दिया कि वे उनके लायक नहीं हैं।

राजा को जब इस बात की सूचना मिली तो वे आश्चर्य चकित रह गये। उन्होंने चन्दन और शोणक को बुलाकर यह आदेश दिया कि नित्य नये-नये नमूने बनाकर रानी के पास भेजे जायें ताकि रानी को अपनी पसन्द के अनुरूप वस्त्राभूषण मिल सकें।

कई दिन निकले। चन्दन और शोणक ने अपनी सारी कारीगरी ख़र्च कर दी, लेकिन वे रानी को उनकी पसन्द के वस्त्र, आभूषण नहीं दे पाये।

राजा शशांक अपना संतुलन खो बैठे। उन्होंने क्रुद्ध होकर चन्दन और शोणक से कहा, "लगता है कि उम्र बढ़ने के साथ तुम्हारी कार्य-कुशलता भी घटती जा रही है! बताओ तो सही अब तुम्हें दरबारमें रखने से क्या लाभ?"

राजा के कुपित होने का समाचार राजमहल

के अन्य निवासियों के साथ सारंग को भी मिल गया। वह राजा शशांक से मिलने आया और बोला, "महाराज, आपने चन्दन एवं शोणक के बारे में जो मत व्यक्त किया है, वह मैंने सुना है। उनकी बढ़ती हुई उम्र के साथ निपुणता के घट जाने की बात जोड़ना मुझे अच्छा नहीं लगा। आज तक हमने उनकी कुशल कारीगरी को देखा है। और अब अचानक इसमें सन्देह करने का कोई अर्थ नहीं है। महारानी ने इन कारीगरों के बनाये वस्त्र एवं आभूषणों को अपने लिए अयोग्य बताकर लौटा दिया, यह भी उचित नहीं हुआ। मेरे ख्याल से हमें इस बात को समझने का प्रयत्न करना चाहिए कि आख़िर त्रुटि कहाँ पर है? उन कारीगरों में नुक्स निकाल कर उन्हें राजदरबार से बर्खास्त करना देश-निर्वासन के दंड देने के समान है। आप से मेरा नम्र निवेदन है कि आपको इस विषय में फिर से सोचना चाहिए।"

राजा शशांक ने सारंग की बातें सावधानी से सुनीं, फिर राजभवन में जाकर रानी को सारी बातें बता दीं।

रानी सुनन्दा कुछ देर विचारमग्न-सी मौन बैठी रही, फिर अपने पति से बोली, "महाराज, आपके मित्र सारंग ने आज सच मुच मेरी आँखें खोल दीं। कृपा करके आप चन्दन एवं शोणक को उनके राजपदों पर ही बने रहने दीजिए! इतना ही नहीं, बल्कि इस बार भरी सभा में उनका विशेष सम्मान किया जाये! बस, यही मेरी कामना है।"

रानी की इस बात से राजा शशांक को बड़ा विस्मय हुआ। पर वे चुप रह कर बड़े प्रसन्न भाव से रानी की कामना को पूरा करने के लिए अपने कक्ष से बाहर आये। यह समाचार उन्होंने मंत्री मकरन्द को सुनाया और चन्दन तथा शोणक का समुचित रूप से सम्मान करने के लिए आवश्यक प्रबन्ध करने का आदेश दिया।

अब मंत्री के आश्चर्यचकित होने की बारी थी। कारीगरों को दंड देने के बदले विशेष सम्मान करने का राजा का यह निर्णय मंत्रियों तथा अन्य सभासदों के लिए कौतुक का विषय बन गया।

एक सप्ताह के अन्दर चन्दन और शोणक

का राज-सम्मान किया गया और उन्हें अनेक मूल्यवान पुरस्कार दिये गये ।

बेताल ने यह कहानी सुनाकर कहा, "राजन, अपने पति महाराज शशांक से सारंग की बातें सुनकर रानी का रोष प्रसन्नता में क्यों बदल गया ? क्या उसने अपना विचार इसलिए बदला कि सारंग उसके पति का अभिन्न मित्र है और उसे रुष्ट करना उचित नहीं है ? या कोई अन्य कारण है ? आप इसका समाधान जानकर भी न करेंगे तो आपका सिर फूटकर टुकड़े-टुकड़े हो जायेगा ।"

राजा विक्रमार्क ने उत्तर दिया, "तुमने जो कुछ कहा, रानी के मन का परिवर्तन उसका कारण नहीं है । सारंग ने यह कहा था कि चन्दन और शोणक अपनी-अपनी कारीगरी में कुशल हैं । इसलिए त्रुटि उनकी कार्य-कुशलता में नहीं, कहीं और होनी चाहिए । उसने संकेत के रूप में जो बात कही, रानी ने उसे अच्छी तरह समझ लिया । सारंग की पूरी बातों का अभिप्राय यह था—उम्र के साथ प्रत्येक व्यक्ति का अनुभव बढ़ता है, उसकी निपुणता बढ़ती है, लेकिन शरीर का सौन्दर्य घटता है, उसका तेज और वर्चस्व भी घटता है, यह शरीर का धर्म है । उम्र ने चन्दन और शोणक की कारीगरी में चार चाँद लगाये, लेकिन रानी ने उनके बनाये वस्त्राभूषणों को अनुपयुक्त बता कर लौटा दिया । रानी को चाहिए यह था कि वह आत्मविमर्श करती कि उसकी उम्र और रूपरेखाएं उन वस्त्राभूषणों के उपयुक्त हैं अथवा नहीं । सारंग की बातें सुनने के बाद रानी को इस सत्य का बोध हुआ और उसने जान लिया कि कारीगरों की कारीगरी में कोई त्रुटि नहीं है, त्रुटि वय के साथ क्रमशः शोभाविहीन होते जा रहे शरीर में है । इस बात पर पहले वह विचार नहीं कर पाई । इस बात का उसे दुख हुआ । इसलिए उसने राजा से अनुरोध किया कि उन कलाकारों का भव्य सत्कार किया जाये !"

राजा के इस प्रकार मौन होते ही बेताल शव के साथ अदृश्य होकर पुनः पेड़ पर जा बैठा ।

(कल्पित)
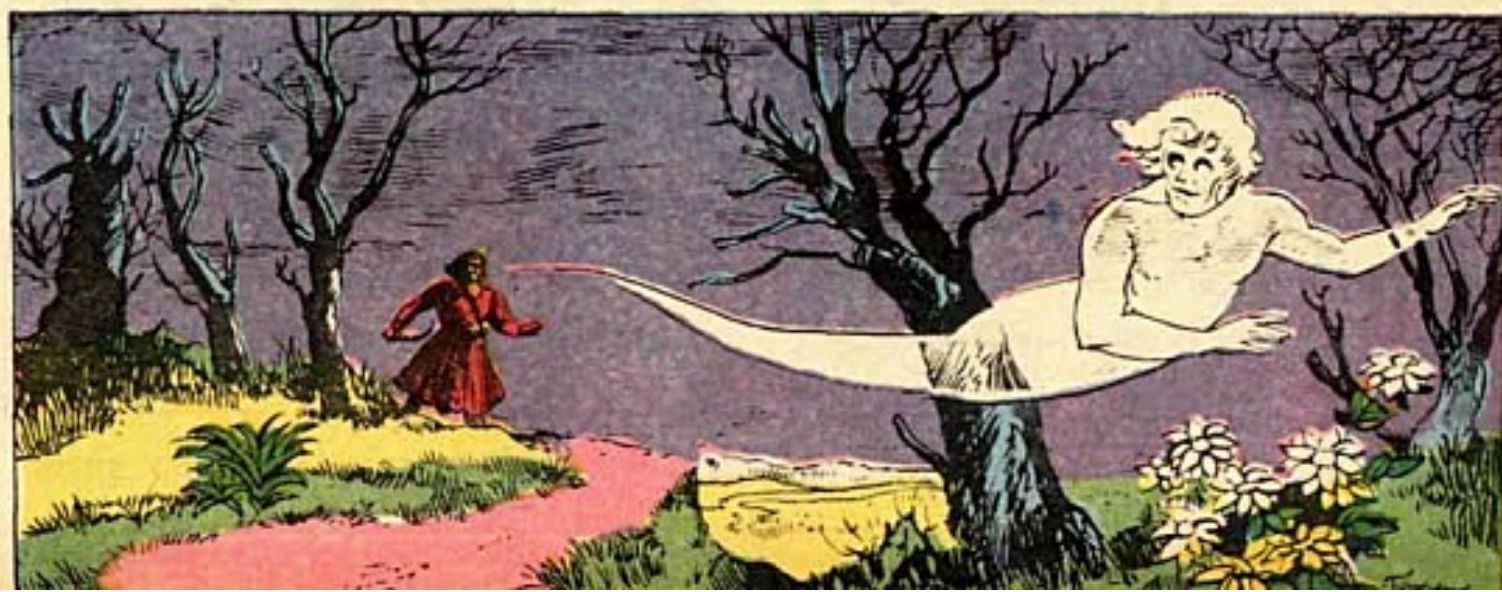
चार प्रश्न

लक्षण देश में उन दिनों राजा सुकेतु का राज्य था। उनका अपना एक मंत्रि-मंडल तो था ही, पर राजगुरु लक्ष्मीनाथ पंडित उनके विशिष्ट सलाहकार थे और उनकी बातों का सभी लोग सम्मान करते थे।

एक बार राजा सुकेतु ने एक नये और विशिष्ट पद की घोषणा की और उस पर किसी सुयोग्य व्यक्ति की नियुक्ति का निश्चय किया। उस पद का अधिकारी व्यक्ति राजा का मुख्य सलाहकार होगा और ऐसा राजा का विचार था।

इतने महत्वपूर्ण पद पर नियुक्त होनेवाले व्यक्ति का चुनाव अत्यन्त समर्थ व्यक्तियों द्वारा होना उचित था।

राजा ने इस कार्य के लिए अलग-अलग क्षेत्रों में अनुभवप्राप्त, अत्यन्त कुशल एवं विद्वान लोगों की एक मंडली को नियुक्त किया और उसमें राजगुरु लक्ष्मीनाथ पंडित को विशेष रूप से उपस्थित रहने का आग्रह किया। राजगुरु ने राजा की बात मान ली।

राजा ने सबके सामने अपना यह विचार व्यक्त किया कि पद के उम्मीदवारों से केवल शास्त्रसम्बन्धी प्रश्न ही पूछे जाने चाहिएं लक्ष्मीनाथ पंडित ने राजा से कहा, "सुकेतु, शासन के कार्य में प्रमुख पद का निर्वाह करनेवाले व्यक्ति को केवल शास्त्र-ज्ञान ही नहीं, व्यावहारिक ज्ञान भी होना चाहिए। उसमें नैतिक योग्यता, नीति और व्यवहार-कुशलता भी होनी चाहिए। इसलिए जब उम्मीदवारों के शास्त्र-ज्ञान की परीक्षा हो चुकेगी तो मैं अंत में उनसे चार प्रश्न करूँगा। जो उन प्रश्नों का सही उत्तर दे पायेगा, वही उस पद के लिए योग्य व्यक्ति माना जायेगा।"

राजगुरु के प्रस्ताव को सबने सादर स्वीकार

गोरख प्रसाद

किया ।

इसके एक सप्ताह बाद पद के उम्मीदवारों का चुनाव आरंभ हुआ। विभिन्न क्षेत्रों में विशेष अनुभव प्राप्त विद्वानों ने उम्मीदवारों से अनेक प्रश्न किये ।

अन्त में लक्ष्मीनाथ पंडित ने पहले की परीक्षाओं में उत्तीर्ण व्यक्तियों से सबके बीच ये प्रश्न कियेः

हरण न किये जानेवाले धन का हरण करनेवाली चीज़ क्या है ?

ऐसी कौन सी चीज़ है जिसे पत्नी को भी नहीं बताया जा सकता ?

अनर्थ करने वाली चीज़ का क्या नाम है ?

एक मुख्य राज-अधिकारी के लिए आवश्यक योग्यता और व्यवहार-पद्धति क्या होनी चाहिए ।

परीक्षा में विशेष रूप से उत्तीर्ण हुए लोग भी राजगुरु के प्रश्नों का सही उत्तर नहीं दे पाये। न हरण किये जानेवाले धन का पुनः हरण कैसा हो सकता है ? यह प्रश्न तो उनकी समझ में भी नहीं आया जो उम्मीदवारों की परीक्षा लेने के लिए आये थे ।

लक्ष्मीनाथ पंडित के प्रश्नों का उत्तर न दे सकनेवाले कई उम्मीदवार लज्जित होकर वहाँ से चले गये। यह देख राजा सुकेतु को बड़ी बेचैनी होने लगी कि क्या इस पद के योग्य उम्मीदवार कोई नहीं है ?

लेकिन तभी एक युवक सामने आया । उसका नाम विश्वनाथ था और उसने काशी में सभी शास्त्रों का अध्ययन किया था। विश्वनाथ

अभी नवयुवक ही था। पर सभी प्रश्नों के सही उत्तर देकर विश्वनाथ ने सबको आश्चर्यचकित कर दिया और वह सर्वसम्मति से उक्त पद के लिए चुन लिया गया।

राजगुरु ने पहला प्रश्न किया तो विश्वनाथ ने उत्तर में कहा, "हरण न किया जा सकनेवाला धन ज्ञान धन है। उसे हरण करनेवाली चीज़ अहंकार है।"

विश्वनाथ के उत्तर से लक्ष्मीनाथ पंडित अत्यन्त प्रसन्न हुए और उत्साह में आकर बोले, "अब यह बताओ, पत्नी को भी न बताई जाने योग्य चीज़ क्या है?"

विश्वनाथ ने कहा, "रहस्य!"

"अति उत्तम! तुम ने सही उत्तर दिया अब सुन लो, मेरा तीसरा प्रश्न है—अनर्थ पैदा करनेवाली चीज़ क्या है?"

"आवश्यकता से अधिक कोई भी वस्तु अनर्थ पैदा करती है!" विश्वनाथ ने कहा।

"एकदम ठीक! मेरा अंतिम प्रश्न है—एक मुख्य राजअधिकारी के लिए कौन सी योग्यता और व्यवहार-पद्धति होनी चाहिए? तुम सोच-समझ कर मेरे इस अंतिम प्रश्न का उत्तर दो।" राजगुरु ने पूछा।

विश्वनाथ ने कहा, "इसके पूर्व आपने जो तीन प्रश्न किये और मैंने उनके जो उत्तर दिये, वे सब उत्तर इस चौथे सवाल का जवाब हैं। जो व्यक्ति इतने महत्वपूर्ण पद पर आसीन होता है, उसे अहंकार से दूर होना चाहिए। निकटतम व्यक्ति को भी राज्य के किसी रहस्य को नहीं बताना चाहिए। प्रत्येक विषय में उचित-अनुचित का विवेक रख अपनी सीमा के अन्दर सन्तुलित व्यवहार करना चाहिए। ये सब गुण उस पदाधिकारी के लिए आवश्यक हैं।"

विश्वनाथ की योग्यता की सभी ने भूरि-भूरि प्रशंसा की। राजगुरु ने उसे उत्तीर्ण और पद के लिए निर्णीत व्यक्ति घोषित किया। राजा सुकेतु ने राजकीय सम्मान के साथ विश्वनाथ का अभिनन्दन किया और उसे अपने निजी सलाहकार एवं प्रमुख पदाधिकारी के पद पर नियुक्त किया।

हमारे मन्दिर

चिदंबरम

पुराने किसी काल में दारुकवन में कुछ मुनियों का एक आश्रम था। उन मुनियों में अपने ज्ञान एवं महिमा को प्रदर्शित करने की अद्भुत शक्ति थी। अपनी शक्ति पर इन मुनियों को बड़ा अभिमान था। अपनी इन शक्तियों के कारण इनकी ऐसी मान्यता थी कि ये सबकी पूजा पाने के अधिकारी हैं।

एक दिन जब सभी मुनि आश्रम से बाहर गये हुए थे, तब एक युवा भिक्षु मधुर स्वर में गाता हुआ, कहानियाँ सुनाता हुआ वहाँ आया। उस युवा भिक्षु को देख मुनि-पत्नियाँ उस पर मुग्ध हो गयीं और सब उसके पास घिर आयीं।

मुनियों ने आश्रम लौटकर जब यह दृश्य देखा तो उन्हें बड़ा क्रोध आया। मुनियों ने अपनी पत्नियों को घर चलने को कहा, धमकाया, पर उन पर कोई असर नहीं हुआ। मुनि-पत्नियों ने उनकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा और न तो उस भिक्षु ने ही उनकी ओर कोई ध्यान दिया।

मुनियों का क्रोध और भी अधिक बढ़ गया। उन्होंने अपनी शक्तियों का प्रयोग करने का निश्चय किया। उन्होंने एक बाघ की सृष्टि की और उसे उस युवा भिक्षु पर खदेड़ दिया। बाघ भयंकर गर्जन करता हुआ उस भिक्षु पर कूदने को हुआ।

लेकिन जैसे ही वह उसके निकट पहुँचा, भिक्षु ने मन्दहास करके उसका स्पर्श कर दिया। दूसरे ही क्षण बाघ तो अदृश्य होगया और उसका चर्म युवक की कटि के चारों ओर लिपट गया। इस दृश्य को देख मुनियों को बड़ा विस्मय हुआ।

पर मुनियों का अहंकार दलित नहीं हुआ। उन्होंने एक और प्रयत्न किया। बौनी आकृति के एक भूत की सृष्टि की और उसे आक्रमण के लिए युवा भिक्षु की तरफ़ भेज दिया। नाटा भूत भयंकर गर्जन करता हुआ युवक के निकट पहुँचा, लेकिन दूसरे ही क्षण वह युवाभिक्षु के पैरों के नीचे था।

इस दृश्य को देखने के बाद मुनियों के भीतर कुछ ज्ञानोदय हुआ। वे यह अनुमान लगा सके कि यह युवा भिक्षु कोई साधारण व्यक्ति नहीं है, बल्कि कोई देवता छद्मवेश में यहाँ उपस्थित हुआ है। इसके बाद सभी मुनि उस भिक्षु के निकट पहुँचे और विनम्रता के साथ हाथ जोड़ कर पूछा, "महानुभाव, आप कौन हैं ?"

युवा भिक्षु ने मुनियों की जिज्ञासा के उत्तर में अपना परमशिव रूप धारण किया। उन्होंने मुनियों का अहंकार नष्ट करने के लिए ही यह नाट्य रचा था। जब मुनियों की पत्नियों ने ही अपने पतियों की महिमाओं को महत्व नहीं दिया तो उनका अहंकार पूर्ण रूप से नष्ट होगया। सब मुनियों ने शिव के चरणों में प्रणिपात किया।

वे सब शिव के सामने बैठकर उनकी महिमा और कृपा का गुणगान करने लगे। उनके भक्तिस्तोत्र में तन्मय होकर शिव नृत्य करने लगे। शिव के नाट्य को देख मुनियों को परमानन्द हुआ। कुछ देर बाद शिव अन्तर्धान होगये।

शिव के इस अद्भुत नाट्य के बारे में जब आदिशेष ने सुना तो उनके मन में शिव के इस नाट्य को देखने की कामना उत्पन्न हुई। उन्होंने शिव से अपना नाट्य दिखाने की प्रार्थना की। लेकिन यह विधि-विधान था कि देवताओं को भी अगर शिव का नाट्य देखना है तो उन्हें मानव-जन्म धारण करना पड़ेगा।

आदिशेष ने पतंजलि के रूप में जन्म लेकर शिव के नटराज रूप के दर्शन किये। नटराज के एक पैर के नीचे अहंकार रूपी राक्षस है। एक हाथ में डमरू जीवन-संगीत का प्रतीक है। दूसरे हाथ में शक्तिरूपिणी अग्नि है। तीसरा हाथ भक्तों के लिए अभयदान-मुद्रा में उठा हुआ है। चौथा हाथ शरणागतों की रक्षा के लिए सन्नद्ध है।
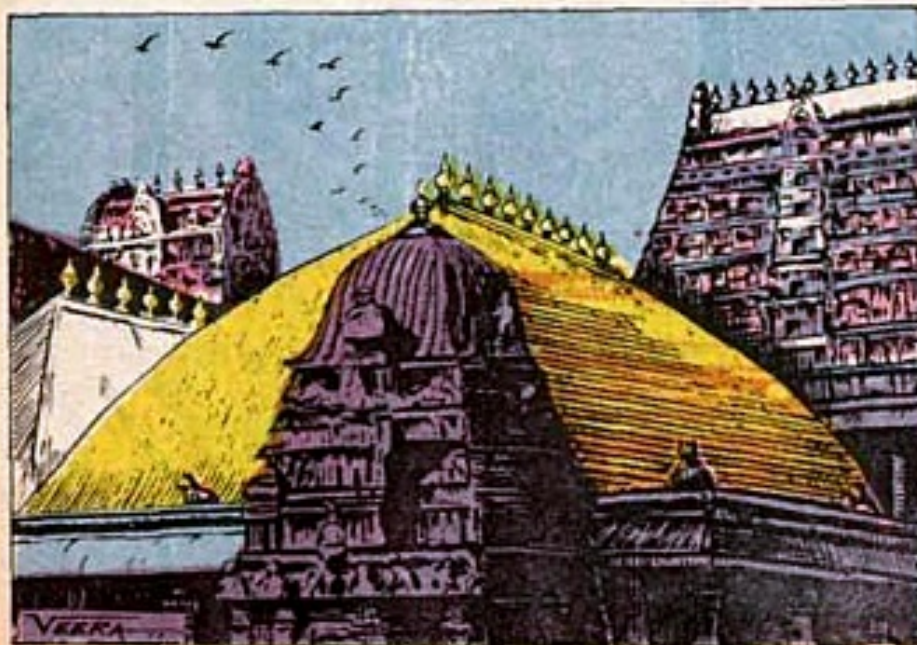
शिव ने जिस स्थल पर नृत्य किया था, वह अत्यन्त प्राचीन काल से ही चिदम्बरम नामक शिव क्षेत्र के रूप में विख्यात है। बत्तीस एकड़ ज़मीन के क्षेत्रफल में निर्मित विशाल मन्दिर है जो दो हज़ार वर्ष पुराना है। इस मन्दिर की अद्भुत शिल्प कला दर्शकों के मन में आनन्द और आश्चर्य के भाव को जन्म देती है।

"लो, मैं आया"

एक हज़ार वर्ष पहले चीन के हांगी चौ नगर में एक प्रसिद्ध डाकू रहा करता था। पर यह बात कोई नहीं जानता था कि उसका नाम क्या है, वह कहाँ और कैसे रहता है ? उसने कई घरों में घुसकर डाके,डाले, चोरियाँ कीं, किन्तु उसे कभी किसी ने देखा नहीं था। उसकी एक विशेषता थी, वह जब भी चोरी करता, उस घर की दीवार पर यह लिख दिया करता था, "लो, मैं आया।"

इस कारण से उस डाकू का नाम ही "लो, मैं आया" पड़ गया था।

धीरे-धीरे "लो, मैं आया" की चोरियाँ बढ़ती चली गयीं। जनता ने सरकार से प्रार्थना की कि उन्हें इस चोर से छुटकारा दिलाये। जनता की मुसीबत देखकर न्यायाधीश ने कोतवाल को आदेश दिया कि सारा नगर छान डाला जाये और "लो, मैं आया" चोर को पकड़ा जाये। न्यायाधीश ने चोर को हाज़िर करने की एक अवधि भी निश्चित कर दी।

कोतवाल और नगर के रक्षक सैनिक गण बड़े संकट में फँस गये। चोर साधारण आदमी नहीं था। वह इतना चालाक था कि आज तक कोई नहीं जान पाया था कि वह कैसे रूप-रंग का है, कहाँ और किस तरह रहता है। पूरे नगर में उसका हलका-सा सुराग़ भी किसी के पास नहीं था। ऐसे व्यक्ति को एक निश्चित अवधि के अन्दर बन्दी बनाना कोई आसान काम नहीं था।

कोतवाल और सैनिकों ने दिन-रात एक कर दिया। आख़िर एर आदमी सन्देह की स्थिति में पकड़ा गया। वे उसे बन्दी बनाकर न्यायाधीश के पास ले आये और बोले, "हुज़ूर, यही "लो, मैं आया" डाकू है। आप इसे कठोर दंड देकर नगर को आफ़त से मुक्त कीजिये !"

चीन की लोक-कथा

कोतवाल के अनुरोध को मानकर न्यायाधीश ने कहा, "ठीक है। फिलहाल इसे कारागार में बन्दी बनाकर रखा जाये। सुनवाई के समय सच्चाई प्रकट हो जायेगी।"

बन्दी वास्तव में असली डाकू ही था। उसने कारागार में क़दम रखते ही चालाकी दिखायी। वह बड़े अदब से कारागार के अधिकारी से बोला, "हुज़ूर, ख़ाली हाथ बड़ों की सेवा में हाज़िर होना हमारा रिवाज़ नहीं है। पर क्या बताऊँ ? जब सिपाहियों ने मुझे बन्दी बनाया, तब मेरे पास जो कुछ था, उन्होंने छीन लिया। अगर आपको आपत्ति न हो तो मैंने पहाड़ी देवता के मन्दिर के पास एक ईंट के नीचे थोड़ी चांदी छिपा रखी है, आप उसे ले लीजिये !"

कारागार के अधिकारी ने पहले तो डाकू की बातों पर विश्वास नहीं किया, पर फिर भी वह सच्चाई जानने के लिए मन्दिर के पास गया और क़ैदी की बतायी हुई ईंट हटाकर देखा तो वहाँ से एक सेर चांदी निकल आयी।

उस दिन के बाद से कारगार का अधिकारी डाकू के साथ मैत्रीपूर्ण व्यवहार करने लगा।

कुछ दिन बीत गये। एक दिन मौक़ा पाकर क़ैदी कारागार के अधिकारी से बोला, "साहब, मैंने पुल के नीचे भी थोड़ा-सा धन गाड़ रखा है। आप उसे भी क्यों नहीं ले लेते !"

अधिकारी ने पूछा, "पुल पर हमेशा लोगों का आवागमन रहता है। मैं वह धन कैसे ले आऊँ ?"

न्यायाधीश ने पूछा, "यही वह डाकू है, इस बात का क्या सबूत है ?"

"सरकार, हमने बड़ी सावधानी से इसकी टोह ली है और इसकी गतिविधियों को जाँच-परखकर इसे बन्दी बनाया है। आप मेहरबानी करके हमारी बातों का विश्वास कीजिए !" सैनिकों सहित कोतवाल ने कहा।

"महाशय, ये लोग अपना काम पूरा करने के लिए किसी एक को बन्दी बनाना चाहते थे। दुर्भाग्य से मैं इनके हाथों में पड़ गया और ये मुझे पकड़ लाये।" बन्दी ने निवेदन किया।

न्यायाधीश को संकोच करते देख कोतवाल ने ज़ोर देकर कहा, "हुज़ूर, आप इसकी बातों में आकर इसे छोड़ न दीजिएगा। यह बड़ा चालाक चोर है।"

"आप अपने साथ एक थैला लेते जाइये, दो चार कपड़े और भी हों। सब लोग यह समझेंगे कि आप कपड़े धोने गये हैं। धन निकाल कर थैले में डाल लीजिए, साथ ही दूसरे कपड़ों को पानी में निचोड़ कर उस पर डाल दीजिये। कोई भी आपकी तरफ़ नज़र उठाकर न देखेगा।" कैदी ने उपाय बताया।

अधिकारी ने कैदी के कहे मुताबिक़ स्वांग रचा और चांदी खोद लाया। इसके बाद उन दोनों की मित्रता ने और भी ज़ोर पकड़ लिया।

एक रात जेल का अधिकारी कैदी के साथ पीने के लिए शराब की एक बोतल लाया। दोनों ने शराब पी। कुछ देर बाद कैदी ने अधिकारी से कहा, "देखो भाई, आज की रात मैं अपने घर हो आता हूँ। सुबह तक मैं लौट आऊँगा। तुम ज़रा भी मत डरो, मैं तुम्हारी कसम खाता हूँ, मेरे भाग जाने का सन्देह मत करो। अगर मैं भागता हूँ तो इसका मतलब है कि मैंने अपना अपराध स्वीकार कर लिया है। फिर मैं भागूँ भी क्यों? आज नहीं तो कल न्यायाधीश मुझे स्वयं ही मुक्त कर देंगे। मैंने तो कोई अपराध किया नहीं है।"

क़ैदी ने इतने विश्वास से अपनी बात अधिकारी के सामने रखी थी कि वह पशोपेश में पड़ गया। क़ैदी को कारागार से बाहर जाने देने से उसके अपने ऊपर इल्ज़ाम आ सकता था, फिर भी उसने कुछ सोचकर हामी भर ली। क़ैदी ने बाहर जाने के लिए फाटक का उपयोग नहीं किया। वह छत पर से कूदकर कारागार से बाहर होगया।

सुबह होने से पहले ही क़ैदी छत के रास्ते ही वापस आगया। उसने खर्राटे भर रहे अधिकारी को जगाकर कहा, "लो, मैं आया!"

"वाह तुमने तो अपने वचन का पूरा पालन किया। तुम तो बड़े ही भले आदमी हो!" अधिकारी ने प्रसन्न होकर कहा।

"आता कैसे नहीं? क्या तुम्हारी इज्जत धूल में न मिल जाती? भाई, तुमने मेरा जो उपकार किया है, उसे मैं जीवन भर नहीं भूल सकता। मैं अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिए आपके घर में एक छोटी-सी भेंट छोड़ आया हूँ। आप अभी जाकर देख लीजिए। अब मुझे यहाँ अधिक समय रहना नहीं है।" क़ैदी ने कहा।

कारागार का अधिकारी अपने घर पहुँचा तो उसकी पत्नी ने कहा, "जानते हैं आज क्या बात हुई ? भोर होने में अभी कुछ ही देर बाकी थी कि एक पोटली रोशनदान से कमरे में आ गिरी। मैंने खोलकर देखा तो उसके अन्दर सोने-चांदी की थालियाँ थीं।"

अधिकारी समझ गया कि क़ैदी की 'छोटी सी भेंट' यही है। उसने पत्नी को समझाते हुए कहा, "अरी भागवान, तुम ज़ोर से मत बोलो। इस पोटली को सावधानी से छिपा दो ! जब भी हमें मौक़ा मिलेगा, हम इस सोने-चांदी के सामान को बेचकर नगद कर लेंगे।"

उस दिन न्यायालय में जो फरियादी आये, उन्होंने न्यायाधीश के सामने फरियाद की, "हुजूर, कल रात हमारे घर में "लो, मैं आया" डाकू आया था। उसने हमारा सोना-चांदी लूटा और दीवारों पर "लो, मैं आया" यह नाम लिखकर चला गया। आप इस डाकू को शीघ्र पकड़वाइये। वरना हमें सब कुछ से हाथ धोना पड़ेगा।"

"मैंने उसी समय सोचा था कि जो चोर पकड़ा गया है, वह असली चोर नहीं है। सिपाही यों ही किसी को पकड़ लाये हैं। असली चोर "लो, मैं आया" तो अब भी स्वेच्छपूर्वक लूट मचा रहा है।" न्यायाधीश ने कोतवाल से कहा। इसके बाद न्यायाधीश ने कारागार के अधिकारी के पास उस क़ैदी की रिहाई का आदेश भेजा, एक भले, निरपराध इन्सान के साथ अन्याय हुआ, सबने इसका अफसोस माना।

इसके बाद न्यायाधीश ने कोतवाल से कहा, "कड़ी कार्रवाही करके "लो, मैं आया" डाकू को जल्दी से जल्दी गिरफ्तार करना चाहिए।" इसके लिए उसने एक अवधि भी तय कर दी।

इस प्रकार कारागार में आया हुआ डाकू बाइज्जत रिहा कर दिया गया। यह व्यक्ति ही असली डाकू है, यह बात कारागार का अधिकारी समझ गया, लेकिन उसने उसकी चोरी के माल में हिस्सा बँटाया था, इसलिए वह चूँ तक भी न कर सका।

शिवलीलाएँ

अपनी माता की बातों को सुनकर सिद्धराम को बड़ा आनन्द मिला। वह उत्साह में आकर बोला, "माँ, अब दीपावली आनेवाली है। सबकी बहनें एवं बहनोई इस त्यौहार पर आ रहे हैं। मैं भी अपनी दीदी एवं जीजा जी को दीपावली पर बुला लाऊँगा। हमने उन्हें आज तक कभी नहीं बुलाया।"

"बेटा, तुम्हारे पिता का देहान्त हो चुका है। अब उन्हें बुला कर लानेवाला है ही कौन ? तुम तो बच्चे हो। रास्ता बनैला है। उसमें सिंह, बाघ, भालू और साँप भरे हैं। फिर तुम्हारे जीजा अत्यन्त धनवान हैं, वे हम जैसे ग़रीबों के घर क्यों आयेंगे ? तुम बड़े होकर जब धन कमाने लगोगे, तब अपनी दीदी एवं जीजा को बुला लाना।" सिद्धराम की माँ ने उसे समझाने का प्रयत्न किया।

सिद्धराम चुप रह गया। दूसरे दिन भोर होने से पहले ही वह उठा और अपनी माँ को बताये बिना घर से निकल पड़ा। रास्ते में घना जंगल था, पर वह उसमें घुस गया और खूंख्वार जानवरों की परवाह किये बिना आगे बढ़ता रहा। फिर उसे एक संकरा-सा रास्ता दिखाई दिया। इक्के-दुक्के लोग भी नज़र आने लगे। वह उनसे श्रीशैलम् का रास्ता पूछता और उनकी बतायी दिशा में आगे बढ़ जाता। अन्त में वह श्रीशैलम पहुँच गया। वहाँ अनेक मन्दिर थे। सिद्धराम सभी मन्दिरों में अपनी दीदी और जीजा को ढूंढ़ने लगा। फिर उसने एक तीर्थयात्री से पूछा, "मल्लिकार्जुन कहाँ रहते हैं ?" उस यात्री ने एक मन्दिर की ओर संकेत कर दिया। सिद्धराम

हमने आज तक आपको पर्व पर निमंत्रण नहीं दिया, आप बहुत धनी हैं, हमें निर्धन जानकर हमारे घर आने में संकोच न करना। मैं आपको लिये बिना यहाँ से नहीं लौटूँगा।"

सिद्धराम की विनती का कोई उत्तर नहीं मिला। उसने अपनी दीदी भ्रमरांबा से भी इसी प्रकार गिड़गिड़ा कर प्रार्थना की, पर कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं हुआ।

उसने अपने साथियों के सामने डींग मारी थी कि दीपावली पर उसकी दीदी एवं जीजा भी आयेंगे, अब वह उन सब को क्या मुँह दिखायेगा? इस अपमान को सहने से तो अच्छा है कि वह मर जाये। दीदी एवं जीजा के निवास-स्थान इसी श्रीशैलम में प्राण त्यागना अधिक अच्छा होगा, सारा दोष उन्हीं पर लगेगा

यह सब सोचकर सिद्धराम पहाड़ की चोटी पर चढ़ गया और नीचे कूदने को हुआ।

तभी किसी ने उसे कन्धों पर से थाम लिया। उसके एक ओर एक स्वरूपवान पुरुष था, दूसरी ओर कोई स्त्री थी।

सिद्धराम ने उनसे पूछा, "आप दोनों कौन हैं? मैं मरना चाहता हूँ, आप मुझे क्यों रोक रहे हैं? मेरी दीदी एवं जीजा को मुझ पर दया नहीं आयी, फिर आप क्यों मुझ पर दया दिखा रहे हैं?"

तब वह स्त्री अत्यन्त मधुर स्वर में बोली, "भैया, मैं ही तुम्हारी दीदी भ्रमरांबा हूँ। ये मल्लिकार्जुन हैं, तुम्हारे जीजा जी। तुमने हमें

मन्दिर के अन्दर गया तो वहाँ उसे एक शिवलिंग के अलावा और कुछ दिखाई नहीं दिया।

सिद्धराम अभी बालक ही था। लम्बी यात्रा के कारण वह थक कर चूर हो गया था। वह उस लिंग के सामने बैठ गया और दीन स्वर में बोला, "जीजा जी, मैं आपको एवं भ्रमरांबा दीदी को दीपावली पर अपने घर लिवा ले जाने के लिए आया हूँ। मैंने किसी को बताया भी नहीं और अनेक कठिनाइयाँ झेल कर यहाँ तक पहुँचा हूँ। हमारे गाँव के सब बच्चों के बहन-बहनोई त्यौहार पर आ रहे हैं। मेरी माँ आप दोनों को देखने के लिए आँख बिछाये बैठी है। क्या आप यह सोचकर रूठ गये हैं कि

कभी नहीं देखा है, इसीलिए तुम हमें पहचान नहीं पाये। हमने सुना कि सोमयाजी का लड़का इधर भटक रहा है, इसलिए तुम्हें ढूंढ़ते हुए हम यहाँ आये हैं।"

अब तो सिद्धराम के आनन्द का ठिकाना न रहा। उसने अपनी दीदी एवं जीजा को प्रणाम किया। उन्होंने सिद्धराम को अपने पुत्र, गणों और परिवार से परिचित कराया। सिद्धराम ने उन सबको अपने साथ चलने का निमंत्रण दिया। सबने सिद्धराम के अनुरोध को स्वीकार किया।

इधर सिद्धराम की माँ घर में बेटे को न पाकर व्याकुल हो उठी। वह यह सोचकर डर गयी कि कहीं उसका बेटा उसकी बातों पर विश्वास करके श्रीशैलम न चला गया हो। मार्ग का बन, बनैले जन्तु—सिद्धराम की माँ सिहर उठी।

कुछ दिन बीत गये। दीपावली का त्यौहार आ पहुँचा। सिद्धराम उस दिन प्रातः ही घर लौट आया और अपनी माँ को बताया, "माँ, मैं अपनी दीदी एवं जीजा तथा उनके पूरे परिवार को साथ ले आया हूँ। वे सब मन्दिर के पास हैं।"

सिद्धराम की माँ कौतुहल में भरकर मन्दिर के पास पहुँची। वहाँ उसने पार्वती, परमेश्वर, कुमार स्वामी, विनायक तथा उनके परिवार के दर्शन किये और उन सबको अपने घर आमंत्रित किया।

वे सब जब घर लौटे, तब सिद्धराम के पुराने मकान की जगह एक विशाल भवन खड़ा था। सब अतिथियों ने उसमें प्रवेश किया। उस दिन गाँव के निवासी उस नये दिव्य भवन को देख आश्चर्यचकित हो गये। द्वार बन्द थे, पर उस पारदर्शी-से लगनेवाले भवन के अन्दर चल रहा उत्सव बाहर से प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा था।

दीपावली के पर्व पर मेहमान बनकर आये हुए पार्वती-परमेश्वर सिद्धराम और उसकी माँ को भी अपने साथ कैलाश ले गये। इस तरह बालक सिद्धराम की श्रद्धा फलीभूत हुई। शिवलीला का एक और प्रसंग सुनिये।

गयासुर नाम का एक दैत्य तीनों लोकों पर विजय प्राप्त करने के बाद कैलास पर आक्रमण कर बैठा। भगवान शिव ने अपनी जटाओं को

झटकारा तो उन में से एक भयंकर मुख और शरीर वाले गण का आविर्भाव हुआ। वह दैत्य गयासुर का संहार करने के लिए उस पर टूट पड़ा। गयासुर भयभीत हो उठा और उसने अपने कृत्य के लिए शिव से क्षमा-प्रार्थना की। शिव ने उसे अभयदान दिया।

भयंकरमुख गण विवश होकर आक्रोश कर उठा, "भोजन, भोजन चाहिए।"

"तुम्हें स्वयं अपने शरीर को खाकर अपनी भूख मिटानी होगी!" शिव ने आदेश दिया।

शिव के आदेश को मानकर भयंकरमुख उस गण ने अपने सारे शरीर का भक्षण किया। अन्त में उसका मुख मात्र बचा रहा। तब शिव ने प्रसन्न होकर भयंकरमुख का नाम 'कीर्तिमुख' रखा। फिर उसे वरदान दिया, "हे कीर्तिमुख, तुम समस्त देवताओं के मस्तक पर रहकर उन्हें कीर्ति प्रदान करते रहोगे!"

इस प्रकार भगवान शिव का अंशरूप कीर्तिमुख मकर-तोरण के मध्य प्रत्येक देवता के सिर पर द्युतिमान है।

एक और प्रसंग सुनिये:

प्राचीन काल में बदरिकाश्रम में दुर्वासा मुनि तपस्या किया करते थे। एक दिन मध्यान्ह-पूर्व देवताओं की अर्चना करके ये मुनि अपने आश्रम के सामने बैठकर हविष के अंश को हिरनों के बच्चों को खिला रहे थे। उस समय तुंबुर नाम का एक प्रमथ अपनी पत्नी के साथ गगन मार्ग से जा रहा था। उसने हिरन के बच्चों को देखकर चुटकी बजायी। हिरनों के बच्चे भड़क कर भाग गये। दुर्वासा स्वभाव से ही क्रोधी थे। उन्होंने तुंबुर को मानव-जन्म धारण करने का शाप दे दिया।

तुंबुर शाप सुनकर डर गया। वह विमान से उतर कर बोला, "मुनिवर, आपके हिरन-शावकों को देखकर मैं मुग्ध होगया था और मैंने प्रसन्नता के कारण चुटकी बजायी थी। मेरा उत्साह ही मेरे लिए शाप बन गया है। आपका शाप व्यर्थ नहीं हो सकता। पर आपसे मेरी एक विनती है। आप मुझे मेरे मानव-जन्म में भगवान शिव के प्रति भक्ति प्रदान करें!" दुर्वासा ने तुंबुर का आग्रह स्वीकार कर लिया।

दुर्वासा के शाप के फल स्वरूप तुंबुर ने

कांचीपुर के एक वैश्य परिवार में चिरुतोंड नाम से जन्म लिया । उसकी पत्नी भी तिरुवेंगनांची नाम से जन्म लेकर इस जन्म में चिरुतोंड की पत्नी बनी । उनके सिरियाल नाम का एक पुत्र हुआ ।

चिरुतोंड वीर शैवाचारों को मानता था और सदा एकाम्रनाथ की अर्चना करता था । वह शिवभक्तों का सत्कार करता और उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करता ।

एक दिन उसके घर एक शिवभक्त आया । उसने चिरुतोंड को आशीर्वाद दिया । चिरुतोंड ने भी पूजा-सत्कार करके उसे संतुष्ट किया । शिवभक्त चिरुतोंड से बोला, "बेटा, मैं गन्ने के रस से प्रतिदिन शिव का अभिषेक करता हूँ । यह मेरा नियम है । इसलिए कोल्हू पर हाथ से निकाला गया पाँच सेर गन्ने का रस मुझे चाहिए ।"

चिरुतोंड परम प्रसन्नता से धन लेकर उसी समय गन्ना ख़रीदने के लिए घर से निकल पड़ा ।

पाँच सेर रस के लिए सौ गन्नों की आवश्यकता थी । चिरुतोंड ने सौ गन्ने खरीदे और उनका पुलिन्दा बाँध लिया । पर वह उस बोझ को उठा नहीं पाया । तब शिव मनुष्य रूप धारण कर स्वयं उसके पास आये और गन्ने का पुलिन्दा यथास्थान पहुँचाकर अदृश्य होगये ।

चिरुतोंड को इस घटना से बड़ा आश्चर्य हुआ । उसने अपने को शांत रख कोल्हूचला कर गन्ने का रस पेला और उसे शिवभक्त अतिथि को सौंप दिया । इस प्रकार शिव-अभिषेक संपन्न हुआ ।

कैलाश में शिव के शरीर को पसीने से तर देखकर पार्वती को बड़ा आश्चर्य हुआ । उन्होंने शिव से इसका कारण पूछा । शिव ने उन्हें चिरुतोंड के बारे में बताया और कहा, "मेरा भक्त गन्नों के पुलिन्दे का बोझ नहीं उठा सका, इसलिए मैंने उसकी मदद की । कोल्हू पेलते हुए उसका शरीर पसीने से तर होगया, इसीलिए मेरा शरीर भी पसीने से भीग गया ।"

शिवभक्त चिरुतोंड की बात सुनकर पार्वती ने उस भक्त को देखने की इच्छा प्रकट की ।
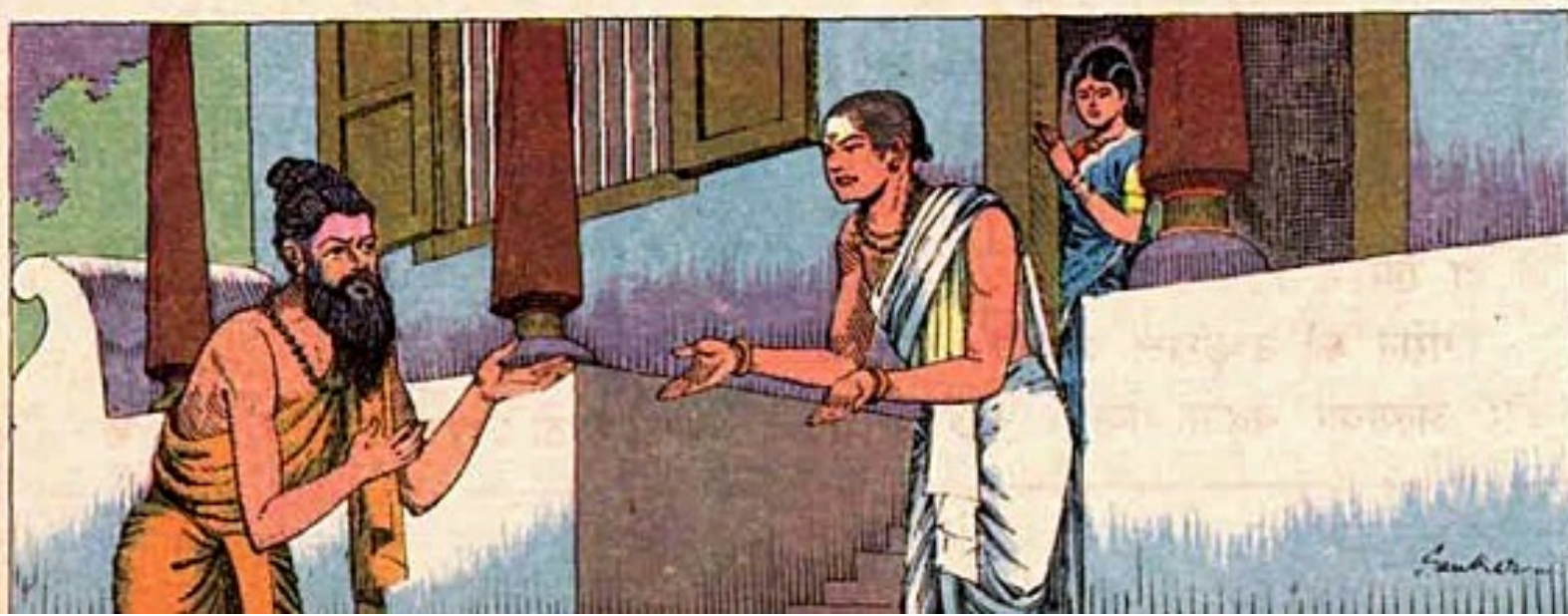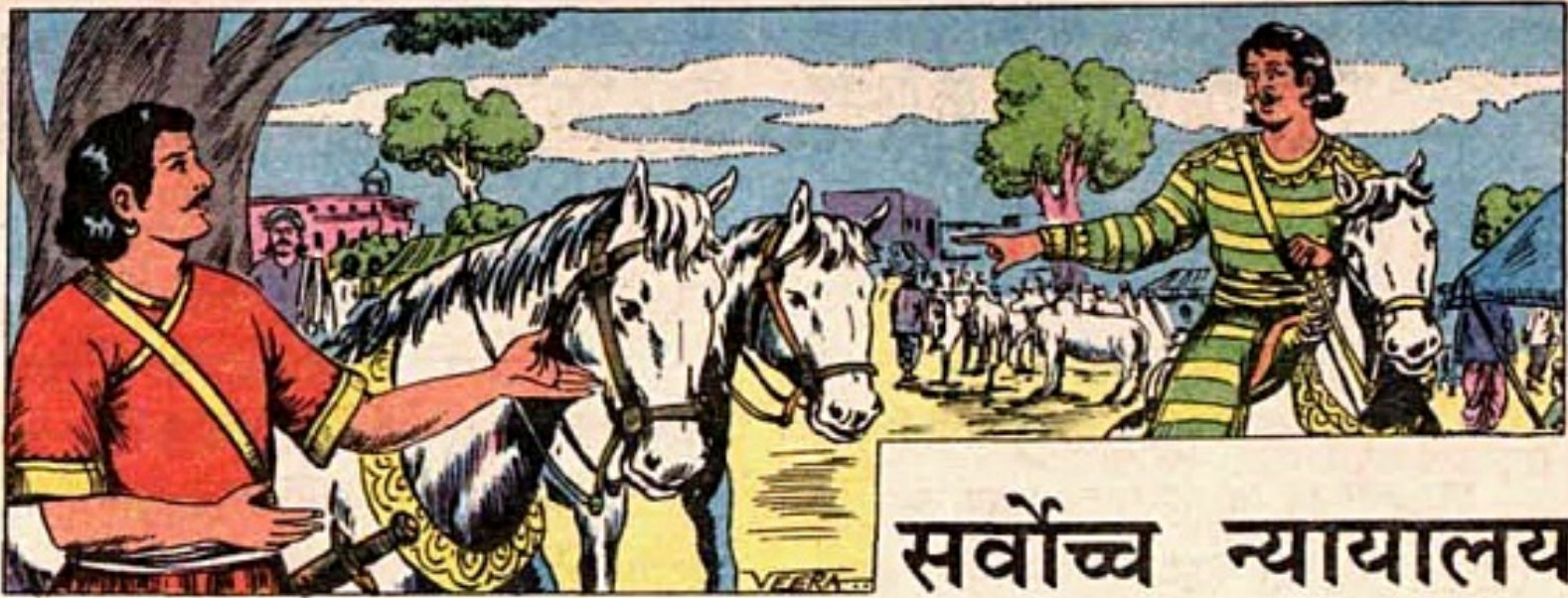
सर्वोच्च न्यायालय

चम्पक देश पर राजा लीलाधर का राज्य था। उसकी रानी नन्दिनी अत्यन्त रूपवती थी। राजा लीलाधर अपनी रानी से बहुत अधिक प्रेम करता था। वह अपने व्यवहार में इतना सतर्क रहता था कि भूल से भी रानी का मन न दुखे।

रानी नन्दिनी का छोटा भाई नागसेन अपनी बहन के आश्रय में रहता था और शासन के कार्यों में मनमाने ढंग से दख़ल देता था। वह विलासपूर्ण जीवन व्यतीत करने का आदी होगया था। वह सदा किसानों तथा व्यापारियों से अन्यायपूर्वक धन वसूल किया करता और अगर कोई उसके इस व्यवहार का विरोध करता तो वह उन्हें धमकी देता था। उसने ऐसा स्वांग रच रखा था, मानो यह सब राजा की स्वीकृति से ही हो रहा है।

नागसेन का उच्छृंखल व्यवहार, अन्याय और अत्याचार बढ़ता गया। कुछ प्रमुख नागरिकों तथा राजकर्मचारियों ने कई बार राजा का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया। राजा ने सुना और समझा भी, फिर भी वह यह सोचकर मौन होगया कि अगर उसने अपने साले को फटकारा या उसके ख़िलाफ़ कोई कड़ी कार्रवाही ली तो रानी दुखी हो जायेगी।

एक बार की बात है, जयमल्ल नाम का एक ग्रामीण युवक अपने दो घोड़े बेचने के लिए चम्पकनगर में आया। नागसेन हाट से गुज़र रहा था। उसकी निगाह उन घोड़ों पर पड़ी तो वह जयमल्ल के निकट पहुँचा।

जयमल्ल ने नागसेन को घोड़ों का ग्राहक समझा। वह उसे घोड़ों की नस्ल और उनके दाम बताने लगा। तब नागसेन ने उसे बीच में ही डपट दिया और बोला, "अरे सुन, शुल्क के रूप में पहले पच्चीस चांदी के सिक्के चुका, नहीं चुकाता है तो एक घोडा हमारे हवाले कर।"

सरोजा गुप्ता

जयमल्ल हक्का-बक्का रह गया, बोला, "भट जी, अभी तो घोड़ों की बिक्री ही नहीं हुई है, फिर शुल्क चुकाने का सवाल ही कहाँ उठता है ?"

जयमल्ल का सीधा-सपाट जवाब सुनकर नागसेन तैश में आगया। कड़ककर बोला, "अबे, तू मुझे समझता क्या है ?" यह कहकर उसने जयमल्ल के गाल पर थप्पड़ लगा दिया।

इस अपमान को जयमल्ल सहन नहीं कर सका। वह हट्टा-कट्टा नौजवान था। उसने तलवार खींच ली। उन दोनों के बीच कुछ देर लड़ाई होती रही, नागसेन घायल हो गया और डरकर वहाँ से भाग गया।

नागसेन सीधा राजा लीलाधर के पास पहुँचा। उस समय मंत्री मकरन्द और रानी नन्दिनी भी वहीं पर मौजूद थे। नागसेन ने राजा से शिकायत की, "महाराज, घोड़ों का एक देहाती सौदागर इस नगर में आया है। वह बड़ा दुष्ट है। उसने मुझे अकारण घायल कर दिया। वह इस समय हाट में है। आप उसे तुरन्त बन्दी बनाइये और कठिन दंड दीजिये।"

राजा ने अपने राजसैनिकों को बुलाना चाहा। मंत्री मकरन्द ने राजा से धैर्य रखने का निवेदन किया और कहा, "महाराज, उस सौदागर को अवश्य ही कठिन दंड दिया जाना चाहिए, पर हमें न्याय-अन्याय की सच्ची सुनवाई के लिए घटना-स्थल पर मौजूद कुछ गवाहों को भी बुलाना चाहिए।"

मंत्री मकरन्द की बात रानी नन्दिनी को अच्छी नहीं लगी। वह दख़ल देकर बोली, "राजबन्धु पर हाथ चलाने से बढ़कर और

कौनसा अपराध हो सकता है ? तत्काल उस सौदागर को बन्दी बनाकर सूली पर चढ़ा देना चाहिए।'' यह कहकर रानी अपने भाई को साथ लेकर वहाँ से चली गयी ।

राजसैनिक हाट में पहुँचे और जयमल्ल को बन्दी बनाकर राजा के पास ले आये। जयमल्ल ने अत्यन्त विनम्रतापूर्वक राजा को सारी घटना सुनायी और बताया कि उसे विवश होकर नागसेन पर तलवार चलानी पड़ी। राजा को उसके बयान में सच्चाई प्रतीत हुई, पर रानी के कुपित हो जाने के भय से राजा ने उसे फाँसी की सज़ा सुनायी । राजसैनिक जयमल्ल को कारागार में ले गये। फाँसी दूसरे दिन दी जाने वाली थी ।

राजा लीलाधर को यह विचार मथित करने लगा कि उसने एक निर्दोष व्यक्ति को मृत्यु-दंड सुनाया है। सुबह होते ही जयमल्ल को फाँसी दे दी जायेगी, एक निर्दोष मनुष्य को—बहुत कोशिश करने के बाद भी राजा को रात में नींद नहीं आयी ।

आधीरात राजा ने मंत्री को बुलाकर पूछा, "मंत्रिवर, क्या कोई ऐसा उपाय है कि जयमल्ल की सज़ा रद्द हो जाये और रानी को भी क्रोध न आये !''

मंत्री मकरन्द ने कुछ देर विचार किया, फिर बोला, ''महाराज, एक उपाय है । अगर जयमल्ल रानी एवं नागसेन से क्षमा मांग ले तो उसे प्राण-भिक्षा देने की व्यवस्था की जा सकती है। फिर हम उसे कुछ काल के लिए कारागार की सज़ा देकर मुक्त कर देंगे। इस तरह समस्या

हल हो जायेगी ।"

इस योजना को कार्यान्वित करने के लिए राजा और मंत्री कारागार के निकट पहुँचे । मंत्री मकरन्द ने जयमल्ल से कहा, "जयमल्ल, जो होना था हो गया । अगर तुम मृत्यु-दंड से बचना चाहते हो तो महारानी और राजबन्धु नागसेन से प्राणों की भिक्षा माँग लो और अपने आचरण के लिए क्षमा-याचना करो !"

जयमल्ल ने मुस्कराकर कहा, "मंत्री महोदय, मैं चन्द घंटों में राजा के फैसले को लेकर सर्वोच्च न्यायालय में फरियाद करने वाला हूँ। मुझे आप माफ़ करें। वास्तव में मुझे किसी से भी क्षमा माँगने की आवश्यकता नहीं है।"

यह उत्तर सुनकर राजा भड़क उठा और बोला, "अरे मूर्ख, क्या इस राज्य के न्यायालय से बढ़कर कोई और भी न्यायालय है ? मैंने तुम्हें मृत्यु-दंड दिया, फिर तुम पर रहम करके मैं तुम्हारे प्राण बचाने के लिए आया तो तुम मेरे ही सामने हेकड़ी दिखा रहे हो ? तुम बड़े घमंडी मालूम होते हो ?"

राजा की बातें सुनकर जयमल्ल किंचित् भी विचलित नहीं हुआ। उसने गंभीर होकर कहा, "कहा जाता है कि राजा इस पृथ्वी पर भगवान का प्रतिनिधि होता है । अगर वह अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करता है तो किसी को भी यह हक़ है कि उसके फैसले को सर्वोच्च न्यायालय में प्रस्तुत कर भगवान से न्याय की प्रार्थना करे । आपके फैसले को लेकर मैं भगवान के उसी न्यायालय में जानेवाला हूँ । आप निश्चिंत होकर मुझे फाँसी के तख्ते पर चढ़वा दीजिये !"

जयमल्ल की बातें सुनकर राजा की आँखें खुल गयीं । उसे इस युवक के प्रति श्रद्धा हुई, जिसने उसके अन्दर ज्ञानोदय किया । वह समझ गया कि न्याय-शासन कितना पवित्र होता है ।

राजा लीलाधर ने उसी समय जयमल्ल को कारागार से मुक्त कर दिया । वह अब अपने-पराये की भावना से दूर सच्चा न्यायप्रिय राजा होगया । थोड़े ही दिनों में प्रजा उसे धर्मात्मा राजा के रूप में पूजने लगी ।

दाता या मित्र

वरप्रसाद नागपट्टण नगर का प्रमुख व्यापारी था । एक दिन उसका बचपन का मित्र शेषनाथ उससे मिलने आया। उसने अपनी राम कहानी सुनायी और कहा, "दोस्त, मैं अपनी ज़िन्दगी में बहुत धक्के खा चुका हूँ। इस समय हालत यह है कि मैं अपने माता-पिता और पत्नी-बच्चों को भी पालने की स्थिति में नहीं हूँ। मैं अपने बचपन की मित्रता का स्मरण करके तुम्हारे पास आया हूँ। तुम मेरी मदद करके मुझे इस संकट से उबार लो !"

वरप्रसाद और शेषनाथ का बचपन एक ही गाँव में बीता था । वे अड़ोसी-पड़ोसी थे । शेषनाथ मितभाषी और संकोचशील था । वरप्रसाद तेज़ और नटखट था । वह जो भी गलती करता, उसका दोष शेषनाथ पर थोप देता । लेकिन शेषनाथ वरप्रसाद की गलती के बारे में कुछ न कहता और चुपचाप मार-झिड़की खा लेता ।

धीरे-धीरे वरप्रसाद में परिपक्वता आयी और उसने शेषनाथ के शिष्ट व्यवहार को समझ लिया। फिर क्या था, वे दोनों गहरे दोस्त बन गये । कुछ वर्ष बाद वरप्रसाद व्यापार करने के विचार से शहर में गया। उसकी आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी हो गयी। शेषनाथ गाँव में ही रह गाया ।

शेषनाथ का वृत्तान्त सुनकर वरप्रसाद को दुख हुआ, वह बोला, "तुम्हारे जैसे मित्र की सहायता न करूँ तो मेरा जीवन और मेरी संपत्ति व्यर्थ है । तुम गाँव की अपनी सारी ज़मीन-जायदाद बेचकर यहाँ पर आ जाओ । तुम्हारे धन को मूलधन मानकर मैं तुम्हें अपने व्यापार में हिस्सेदार बना लूँगा ।"

शेषनाथ ने वरप्रसाद के सुझाव का पालन किया और सब कुछ बेचकर नागपट्टण

आगया । वरप्रसाद ने शेषनाथ के लिए एक अच्छा मकान ख़रीदवा दिया और हर माह घर-ख़र्च के लिए एक हज़ार रुपये की व्यवस्था भी कर दी । वह उसके घर की समस्त आवश्यकताओं की स्वयं जानकारी रखता और उसके बिन कहे ही उन्हें पूरी कर देता । शेषनाथ की हालत काफ़ी सुधर गयी थी । उसके परिवार के सब लोग वरप्रसाद को देवता की तरह मानते थे ।

एक दिन वरप्रसाद ने शेषनाथ से कहा, "दोस्त, तुम मेरे यहाँ नौकरी नहीं करते हो । तुम मेरे व्यापार में हिस्सेदार हो । व्यापार में मदद देने के साथ ही अगर मेरे व्यवहार में कोई कमी तुम्हें नज़र आया करे तो मुझे समझा दिया करो ।"

पर शेषनाथ अपनी सीमा समझता था । वह वरप्रसाद के साथ हमेशा विनयपूर्ण व्यवहार करता और उसके तरीकों की प्रशंसा किया करता । ऐसा कभी नहीं हुआ कि उसने वरप्रसाद की किसी भूल की तरफ़ इशारा भी किया हो ।

शेषनाथ को दुनियादारी का अच्छा अनुभव और ज्ञान था । वह किसी को भी अगर कोई सलाह देता तो बड़ी सोच-समझकर देता और इस बात का पूरा ख्याल रखता कि उसके सुझाव से दूसरे को लाभ हो । धीरे-धीरे वह नागपट्टण में मशहूर हो चला । वरप्रसाद के कानों में भी यह बात आयी कि शेषनाथ की सलाह के कारण बहुत से लोगों का नुक़सान होने से बचा है और उन्होंने अपनी त्रुटियों को सुधार कर भविष्य में लाभ हासिल किया है ।

वरप्रसाद को थोड़ा आश्चर्य अवश्य हुआ । उसने एक दिन शेषनाथ से कहा, "मित्र, मैं नहीं जानता था कि तुम्हारे भीतर ऐसी प्रतिभा छिपी है । तुमने कभी मेरी त्रुटियों की ओर ध्यान आकर्षित नहीं किया ?"

"तुम्हारे भीतर कोई त्रुटि हो तो बताऊँ ?" शेषनाथ ने जवाब दिया । शेषनाथ की बात सुनकर वरप्रसाद अत्यन्त अभिमान से फूल उठा

उन्हीं दिनों एक घटना हुई । वरप्रसाद के बड़े पुत्र रत्नशेखर ने एक ग़रीब घर की लड़की से विवाह करने का निश्चय किया । पर वरप्रसाद ने उस लड़की को बहू बनाकर घर में लाने से इनकार कर दिया । रत्नशेखर को बड़ा आघात

लगा। उसने रुष्ट होकर घर छोड़कर चले जाने की धमकी दी।

इस प्रसंग पर बात करते हुए वरप्रसाद ने शेषनाथ से कहा, "अगर रत्नशेखर घर छोड़कर जाना चाहता है, तो चला जाये, मैं मना नहीं करूँगा। उसे गरीबी के कड़ेपन का अनुभव मिल जायेगा।" शेषनाथ कुछ नहीं बोला, सिर हिलाकर मौन बना रहा।

उन्हीं दिनों एक और व्यापारी धनगुप्त के सामने भी ऐसी ही समस्या आयी। पर वह लड़के द्वारा चुनी गयी गरीब घर की लड़की को बहू बनाकर ले आया। वरप्रसाद इस स्थिति की अच्छाई और बुराई जानने के लिए धनगुप्त के घर पहुँचा।

धनगुप्त ने वरप्रसाद से कहा, "देखो भाई, अगर एकबार दिल टूट जाते हैं तो उनका जुड़ना कठिन हो जाता है। तुम अगर अपने बेटे की इच्छा को स्वीकार कर लेते हो तो तुम्हारे बेटा-बहू जीवन भर तुम्हारे प्रति कृतज्ञ बने रहेंगे। तुम्हारी सेवा करेंगे। अगर तुमने अपने बेटे को घर से चले जाने दिया तो उसकी माँ को भी सदमा पहुँचेगा, घर में सुख और शांति नहीं रहेगी। धन-संपत्ति के होते हुए भी अगर सुख-शांति नसीब नहीं हुई तो फिर ऐसी अमीरी का लाभ ही क्या है ?"

धनगुप्त की बात से वरप्रसाद का मन हलका हो गया। वह प्रसन्न होकर बोला, "भाई धनगुप्त, तुम तो बड़े ही समझदार हो। ऐसा सुन्दर विचार मेरे दिमाग़ में नहीं आया। सबको उत्तम परामर्श देकर यश प्राप्त करनेवाले शेषनाथ के दिमाग़ में भी यह बात नहीं आयी !"

धनगुप्त चकित होकर बोला, "यह तुम क्या कहते हो ? यह विचार मेरे दिमाग की उपज नहीं है। तुम्हारे मित्र शेषनाथ ने ही मुझे यह सलाह दी है।"

धनगुप्त की बात सुनकर वरप्रसाद भौंचक्का रह गया। वह तुरन्त अपने घर लौट आया। उसने शेषनाथ से उसके इस बर्ताव के बारे में बातचीत करनी चाही, लेकिन दूसरे ही क्षण उसके मन में यह सन्देह पैदा हुआ कि शेषनाथ बड़ी बुरी हालत में उसके पास आया था। कहीं वह उससे ईर्ष्या तो नहीं करता ? वह सबको सलाह देता है, पर उसकी छोटी-छोटी

समस्याओं पर भी मौन साधे रहता है। इन सब विचारों से वरप्रसाद का मन विकल हो उठा।

दो दिन बाद सदानन्द नाम के एक संन्यासी वरप्रसाद से मिलने आये। स्वामी सदानन्द वरप्रसाद के कुलगुरु भी थे और वर्ष में एक बार अवश्य ही उसका आतिथ्य ग्रहण किया करते थे। वरप्रसाद अपना हर सुख-दुख उनके सामने प्रकट करता था।

स्वामी सदानन्द की आवभगत करने के बाद वरप्रसाद ने शेषनाथ के विश्वासघात के बारे में उनसे अपना दुख प्रकट किया।

सदानन्द बोले, "वरप्रसाद, तुम्हारी समझ सच्ची नहीं। मैं शेषनाथ के कारण ही आज तुमसे मिलने आया हूँ। उसने मेरे पास सन्देशा भेजा था कि इस समय तुम्हें मेरी अत्यन्त आवश्यकता है।"

वरप्रसाद कुछ रोष और दुख से बोला, "स्वामी जी, जो सहायता वह स्वयं कर सकता था, उसके लिए उसने आपको मेरे पास भेजा, इसमें उसका क्या उद्देश्य हो सकता है?"

सदानन्द मन्द मुस्कराते हुए बोले, "तुम एक बड़े व्यापारी बन गये, तब शेषनाथ बुरी हालत में तुम्हारे पास आया था। तुमने उसकी मदद की और उसकी हालत सुधारी। इसलिए वह तुम्हें सलाह देने में संकोच करता है।"

"सहायता लेने में तो संकोच नहीं हुआ, सलाह देने और मेरी त्रुटियों को समझाने में संकोच होगया है?" वरप्रसाद अपने क्रोध को संयत न रख सका।

"तुम सहायता करनेवाले व्यक्ति हो, दाता हो, यदि वह मित्र की तरह तुम्हें सलाह नहीं दे पाता है तो यह त्रुटि उसकी नहीं, तुम्हारी है।" सदानन्द ने कहा। अपने गुरु की बातों का मर्म समझकर उनके पैरों पर गिर पड़ा।

वरप्रसाद ने अनुभव कर लिया कि उसने शेषनाथ के साथ एक दाता जैसा व्यवहार किया है, मित्र जैसा नहीं। इसीलिए शेषनाथ उससे मित्र की हैसियत से व्यवहार नहीं करता। वरप्रसाद ने अपनी त्रुटि को सुधारा और शेषनाथ की सलाहों से लाभ उठाने लगा।

क़िफ़ायती

भीमराज स्वभाव से ही फिजूलखर्च था । एक दिन उसके मन में अचानक यह विचार आया कि कुछ किफ़ायत की जाये । उसने इस सम्बन्ध में अपने मित्र रंगनाथ की सलाह माँगी । रंगनाथ ने मिट्टी की एक गुल्लक देकर भीमराज से कहा, "प्रतिदिन इसमें कुछ धन डाला करो !"

भीमराज ने उसमें पाँच-छह दिन तक थोड़ा धन डाला, फिर एक हफ़्ते बाद कोई ज़रूरत आ पड़ी तो उसने गुल्लक तोड़ कर धन निकाल लिया और खर्च कर दिया । यह समाचार सुनकर रंगनाथ ने भीमराज को एक लोहे की बनी जमा-पेटी दी और उसे बन्द कर उसकी चाबी भीमराज के मकान के सामनेवाली झाड़ी में फेंक दी ।

एक सप्ताह बाद रंगनाथ भीमराज से मिलने उसके घर गया तो देखता क्या है कि भीमराज झाड़ी में कुछ ढूंढ़ रहा है । कारण पूछने पर उसने बताया, "भाई रंगनाथ, धन की ज़रूरत आ पड़ी है, इसलिए दो दिन से मैं जमा-पेटी की चाबी खोज रहा हूँ ।"

रंगनाथ मुस्करा कर बोला, "इन दो दिनों में तुमने अपना काम चला ही लिया होगा । तुम्हारी सबसे बड़ी कमी यह है कि छोटी सी ज़रूरत आ पड़ने पर ही तुम बचाया हुआ धन तुरन्त निकाल लेते हो और खर्च कर देते हो । इस झाड़ी में वह चाबी कभी नहीं मिलेगी, वह मेरे पास है । व्यर्थ श्रम मत करो !"

भीमराज ने चुपचाप सिर हिला दिया और बोला, "अब तुम्हारे हाथों में पड़कर मैं अवश्य ही किफ़ायती बन जाऊँगा ।"

काँटे से निकला काँटा

आदिवासी इलाके के एक गाँव में सुबन्धु नाम का एक किसान रहता था। उसके एक जवान बेटा था, नाम था प्रेमधन। प्रेमधन में बुद्धि की कमी थी, लेकिन उसकी पत्नी शीला बहुत अक्लमन्द थी।

एक दिन प्रेमधन घर के बाहर बैठ कर हँसिया बनाने के लिए लकड़ी की मूठ तैयार कर रहा था। तभी वहाँ तीन आदमी आये और उससे बोले, "भैया, हमारे राजा समुद्र राजा हैं। उन्होंने हमें आदेश दिया है कि हम तुम्हें लेकर उनके पास उपस्थित हों।"

समुद्र राजा तो देववंश के थे, उनकी प्रजा भी रूप, गुण संपन्न थी। पर प्रेमधन के पास जो लोग आये थे, वे देखने में काले और कुरूप थे। वास्तव में वे तीनों आदमी राक्षस राजा के दूत थे। प्रेमधन यह बात नहीं समझ सका।

"तुम्हारे राजा को मुझसे क्या काम है?" प्रेमधन ने पूछा।

"हमारे राजा को यह समाचार मिला है कि इस देश में तुम जैसा बुद्धिमान और अक्लमंद दूसरा नहीं है। वे तुमसे एक ऐसा काम लेना चाहते हैं जिसे कोई दूसरा नहीं कर सकता। इसीलिए तुम्हें बुलाया गया है।"

उन तीनों में से एक ने कहा।

"देखो भाई, अक्लमंदी के लिए तो मेरे पिता मशहूर हैं। तुम लोग चाहो तो उन्हें तो ले जाओ। वे इस समय खेत में गये हैं। शाम के बाद घर लौटेंगे।" प्रेमधन ने कहा।

"तब तो बेहतर होगा कि तुम दोनोंही आजाओ। हमारी नाव घाट पर लगी है। हम दुबारा नहीं आ सकेंगे। तुम दोनों कल सुबह घाट पर आजाना। वहाँ से हम तुम्हें अपने देश में ले जायेंगे।" यह कहकर वे तीनों काले आदमी वहाँ से चले गये।

उस रात प्रेमधन ने अपने पिता सुबन्धु से सारी बात बतायी और कहा, "पिताजी, हमारे लिए यह बड़े गर्व की बात है कि खुद समुद्र राजा ने हमारे लिए सन्देश भेजा है। हमें ले जाने के लिए अपने दूत और अपनी नाव भेजी है। अगर हमने उनका काम कर दिया तो वे हमें निश्चय ही कोई बढ़िया पुरस्कार भी देंगे।"

सुबन्धु ने बेटे से पूछा, "क्या वे लोग राजा के यहाँ से कोई चिन्ह लाये थे!"

"नहीं! पर इससे क्या होता है? थे तो वे राजा के ही दूत। कल सुबह हम घाट पर पहुँच जायेंगे। वे वहीं से हमें अपने देश ले जायेंगे। इसमें सन्देह की कोई बात नहीं है।" प्रेमधन ने कहा।

"मैं घाट तक पैदल नहीं जा सकता। घाट तो यहाँ से बहुत दूर है। तुम अगर इस दूरी को कम करने का कोई उपाय कर दो तो मैं चल सकता हूँ।" यह कह कर सुबन्धु पैर पसार कर लेट गया।

प्रेमधन ने अपनी पत्नी शीला को सारा किस्सा सुनाया कि कैसे समुद्र राजा ने उनका सम्मान करने के लिए बुलाया है। फिर कहा, "पिताजी कहते हैं कि घाट की दूरी कम करने पर ही वे चल सकते हैं, वरना नहीं! क्या यह संभव हो सकता है? तुम्हीं कोई उपाय बता दो न?"

शीला बोली, "घाट की दूरी कम करने का एक ही उपाय है। तुम पिताजी को कहानी सुनाते जाना, इससे उन्हें रास्ता काटने में कष्ट नहीं होगा और दूरी का पता भी नहीं चलेगा।"
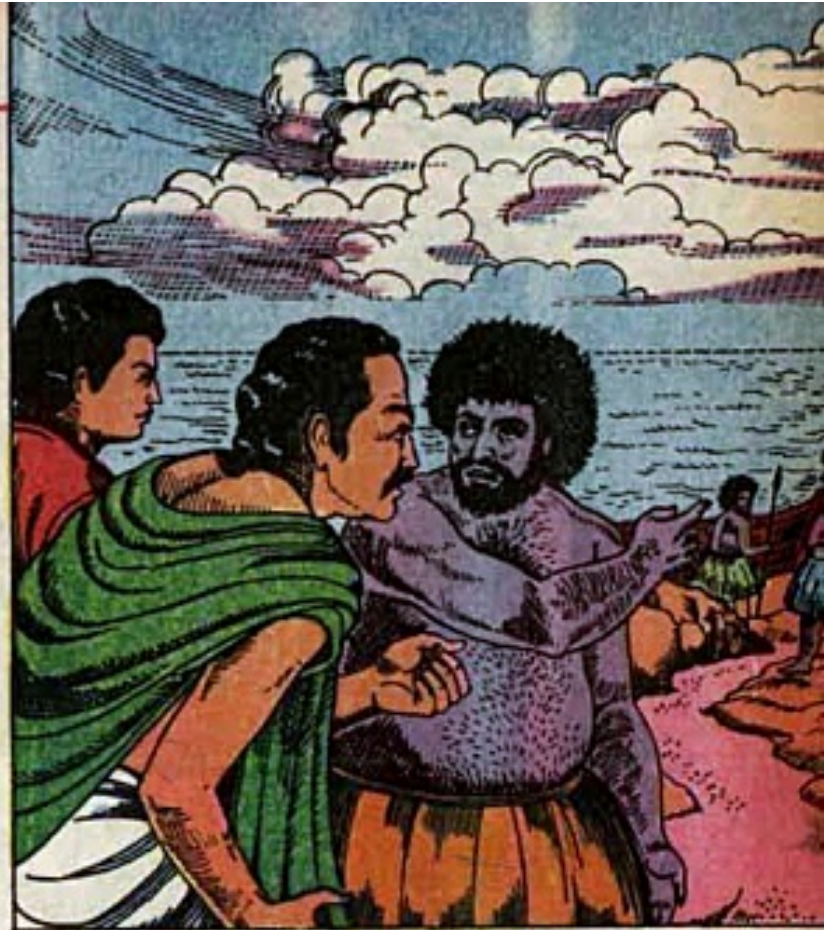
प्रेमधन अपनी पत्नी की अक्लमंदी पर बहुत खुश हुआ। वह भोर होते ही उठ बैठा और अपने पिता को जगाकर बोला, "पिताजी, चलो! तुमने कहा था न कि घाट की दूरी कम होने पर तुम चल सकते हो, तो वैसा उपाय हमने कर दिया है। चलो!"

सुबन्धु और प्रेमधन दोनों बाप-बेटे झट समुद्र-तट पर पहुँचने के लिए घर से निकल पड़े। रास्ते में प्रेमधन बाप को कहानियाँ सुनाता रहा। सचमुच ही सुबन्ध को रास्ते का पता नहीं लगा और वे दोनों घाट पर पहुँच गये। घाट पर एक पुरानी सी नाव थी और तीनों काले आदमी भी थे।

काले आदमियों ने दोनों को तट पर उतारा और पकड़कर अपने राजा के पास ले गये। राक्षसों का राजा और भी अधिक काला और भयानक था।

"हमें यहाँ पर क्यों बुलाया गया है ?" सुबन्धु ने राक्षसों के राजा से पूछा।

"कोई बहुत बड़ी बात नहीं है। हमारे यहाँ एक विशाल हांडी है। हमारे देश के लोग उसके नीचे आग नहीं सुलगा पा रहे हैं। अगर तुम दोनों आग सुलगा दो तो बहुत अच्छा होगा, वरना यह बात याद रखो तुम यहाँ से ज़िन्दा न जा सकोगे।" राक्षस राजा ने कड़ी आवाज़ में कहा।

"बेटा, यह कैसी नाव है ? यह तो राक्षसों की नाव जैसी लगती है।" किसान सुबन्धु ने पूछा।

उन काले आदमियों ने जवाब दिया, "हमारे राजा की सभी नावों में यह नाव सब से अधिक तेज़ चलती है, इसलिए उन्होंने यही नाव भेजी है।"

उनकी बात सुनकर सुबन्धु और प्रेमधन नाव पर सवार होगये। काले आदमी डांड से नाव चलाने लगे। कुछ देर बाद नाव एक टापू के पास पहुँची। वह टापू पूरी तरह उजाड़ था। उसमें पेड़-पौधे का नाम तक न था। दरअसल वह राक्षसों का टापू था। बाप बेटे दोनों यह बात समझ गये। पर अब वे कुछ नहीं कर सकते थे।

"पहले हमें वह हांडी तो देख लेने दीजिये, फिर बाकी काम हम कर देंगे।" सुबन्धु ने कहा

राजा की आज्ञा से कुछ राक्षस उन्हें पत्थर के बने एक विशाल कक्ष में ले गये। कमरे के बीचो-बीच तांबे की एक छह-सात हाथ लंबी-चौड़ी हांडी थी। सुबन्धु ने राक्षसों को बाहर भेजकर किवाड़ पर चिटकनी लगा दी और उस हांडी की तीन बार परिक्रमा की। प्रेमधन ने भी पिता का अनुकरण किया।

इसके बाद सुबन्धु अपने बेटे से बोला, "बेटा प्रेमधन, क्या तुम इस हांडी के बारे में कुछ जानते हो ? यह साधारण हांडी नहीं, यह तो अक्षय भांड है। हमारे देश के राजा के पुरखे प्रतिदिन इस हांडी में भोजन पकवा कर सभी

याचकों को खिलाते थे। कितने भी याचक होने पर इसका भोजन समाप्त नहीं होता था। उसे इन राक्षसों ने अपने कब्जे में कर लिया।"

प्रेमधन को दूसरी ही चिन्ता थी। उसने एकान्त होते ही व्यग्र होकर पिता से पूछा, "हम इन राक्षसों के चंगुल से कैसे बच सकते हैं ?"

"मैं इसका उपाय करूँगा।" यह कहकर सुबन्धु ने किवाड़ खोल दिये और राक्षसों को पुकारा। राक्षसों ने लौटकर पूछा, "क्या तुम दोनों ने आग सुलगा दी ?"

"आग सुलगा लेंगे। क्या सिर्फ़ हवा फूँकने से आग सुलग सकती है ? पहले जामुन, आम, इमली, पुन्नाग, पीपल, बेल, बरगद, कैथ और बाँस की लकड़ियां ले आओ। रूई, चकमक पत्थर और लोहे का टुकड़ा भी ले आना। पल भर में आग सुलगा देंगे।" किसान सुबन्धु ने कहा।

राक्षसों ने राजा के पास जाकर किसान की बातें सुनायीं। राक्षस राजा वहाँ आया और डपट कर बोला, "तुम दोनों पागल तो नहीं होगये हो ? हमारे टापू में घास तक नहीं उगती है। पेड़ तो नाम मात्र के लिए भी नहीं हैं। लकड़ी कहाँ से आयेगी ?"

"तुम्हारे देश में लकड़ी भले ही न हो, पर हमारे देश में तो पेड़ों और लकड़ियों की भरमार है। अपने दूतों को हमारे गाँव भेजो, वे मेरी बहू से लकड़ियाँ माँग कर ले आयेंगे। पर दूतों के साथ तुम अपने बेटों को भी भेजना, वरना मेरी बहू विश्वास नहीं करेगी।" किसान सुबन्धु ने कहा।

"जब तक मेरे दूत और बेटे लकड़ी लेकर न लौटें, तब तक तुम दोनों इस कमरे में ही बन्द रहो।" यह कहकर राजा ने दोनों बाप-बेटे को उस हांडीवाले कमरे में बन्द कर दिया। इसके बाद उसने अपने बेटों को तीन दूतों के साथ किसान के गाँव भेज दिया।

नाव किनारे पर छोड़कर राक्षस राजा के पुत्र सुबन्धु किसान के घर पहुँचे और उसकी बहू शीला से बोले, "तुम्हारे ससुर और तुम्हारे पति हमारे देश में हैं। उन्होंने हमें तुमसे जामुन, आम, इमली, पुन्नाग, पीपल, बेल, बरगद,

कैथ और बाँस की लकड़ियाँ तथा रूई, चकमक पत्थर और लोहे का टुकड़ा माँग कर लाने के लिए भेजा है ।

शीला ने समझ लिया कि उसके ससुर एवं पति के साथ धोखा हुआ है । काँटे को काँटे से ही निकालना होगा, यह सोचकर उसने राक्षस राजा के पुत्रों से कहा, "तुम्हें जो-जो सामग्री चाहिए, वह सब सामने की उस कोठरी में है, ले लो !"

कोठरी अंधेरी थी । जैसे ही राक्षस राजा के पुत्र उस कोठरी में पहुँचे, किसान की बहू शीला ने तुरन्त किवाड़ बन्द कर बाहर से कुंड़ी चढ़ादी और ताला भी ठोक दिया ।

इसके बाद शीला घर से बाहर निकली और कुछ दूर खड़े राक्षस नाविकों से बोली, "तुम्हारे राजा के दोनों बेटे हमारे घर की अंधेरी कोठरी में हैं । उसका ताला अपने आप बन्द हो गया है, बहुत कोशिश करने पर भी नहीं खुला । तुम अपने राजा से जाकर कहो कि मेरे ससुर और पति ही उसे खोल सकते हैं । इसलिए उन्हें तुरन्त यहाँ भेज दें ।" राक्षस नाविक अपने टापू को वापस लौटे और किसान की बहू की सारी बातें अपने राजा से कह सुनायीं ।

राक्षस राजा दाँत पीस कर रह गया । पर वह क्या कर सकता था ? अपने बेटों को उस अंधेरी कोठरी से मुक्त करवाने के लिए उसने सुबन्धु और प्रेमधन को तुरन्त उस हांडीवाले कमरे से बाहर निकाला और अपने नाविकों के साथ गाँव जाने की आज्ञा दी ।

किसान सुबन्धु ने हँसकर कहा, "महाराज, हमें अपने गाँव जाने की कोई जल्दी नहीं है । हम सोचते हैं, पहले आपका काम करके पुरस्कार प्राप्त कर लें, तब गाँव जायें ।"

राक्षस राजा ने अपना पिंड छुड़ाने के लिए उन्हें सोने की एक ईंट पुरस्कार में दी और दोनों को तत्काल गाँव जाकर उन दोनों राक्षस-पुत्रों को छोड़ देने का आग्रह किया ।

सुबन्धु और प्रेमधन ने उसी नाव से राक्षस राजा के पुत्रों को विदा कर दिया और तीनों जन सुख-वैभव से अपना जीवन बिताने लगे ।
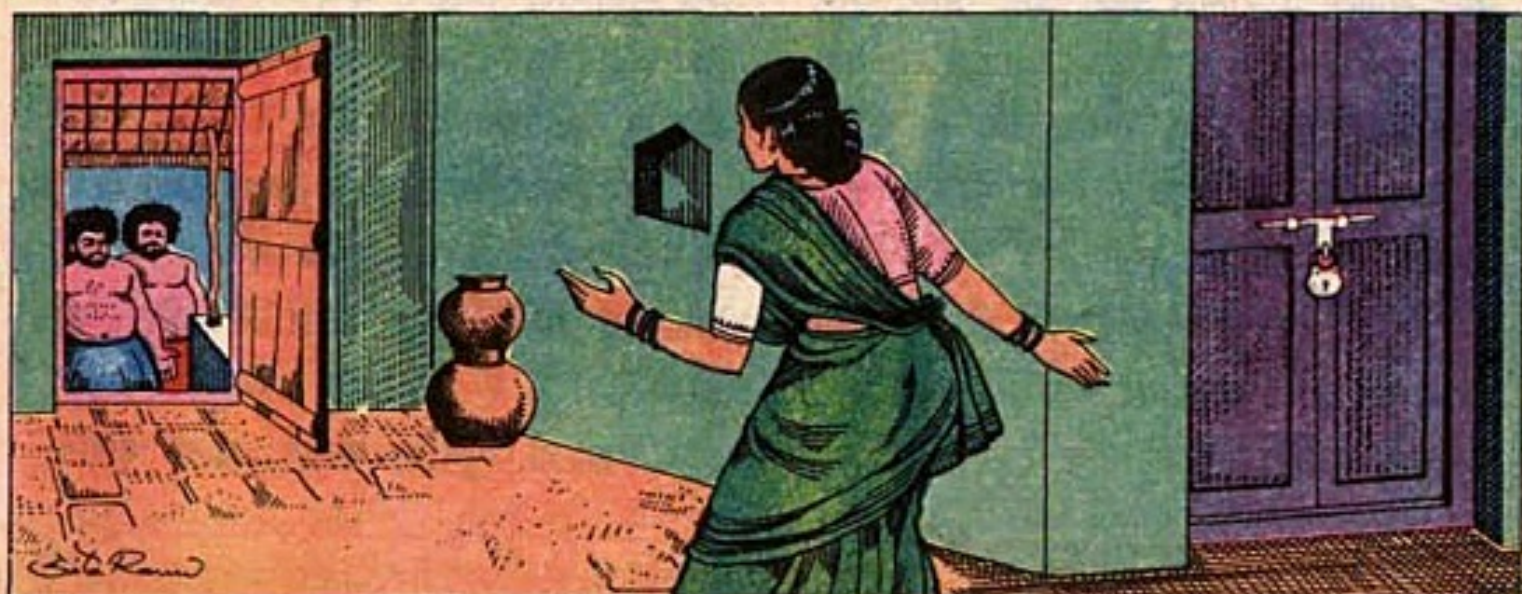
पक्षी-जानवर

दक्षिण अमरीका में भालुओं की एक विशेष किस्म है। इन भालुओं की आँखों के चारों तरफ़ चश्मे जैसी गोलाकार धारियाँ होती हैं। इसीलिए इन्हें चश्मेवाले भालू पुकारा जाता है।

चश्मेवाले भालू
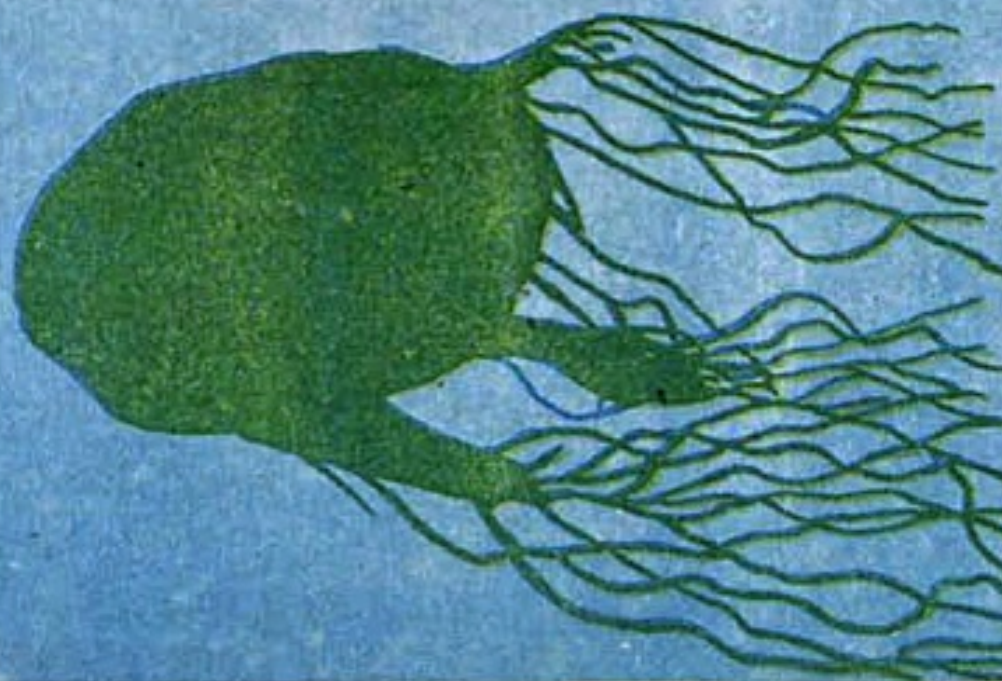
जेल्ली मछली

समुद्री बर्रे नाम से पुकारी जानेवाली आस्ट्रेलियन बाक्स जेल्ली अत्यन्त ख़तरनाक जेल्ली मछली है। इसके शरीर से धागे जैसी करीब चार करोड़ डोरियाँ लटकती रही हैं। ये डोरियाँ मनुष्य को दो-तीन मिनट के अन्दर मार सकती हैं।

बकोली के शरीर में लगभग २,००० माँस पेशियाँ हैं, जबकि मनुष्य के शरीर में केवल ७०० ही मांस पेशियाँ हैं।

मांसपेशियों का समूह

फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता :: पुरस्कार ५०)

पुरस्कृत परिचयोक्तियां अगस्त १९८६ के अंक में प्रकाशित की जायेंगी।

A. V. Rangaiah

A. V. Rangaiah

★ उपर्युक्त फोटो की सही परिचयोक्तियाँ एक शब्द या छोटे वाक्य में हों। ★ जून १० तक परिचयोक्तियां प्राप्त होनी चाहिए। ★ अत्युत्तम परिचयोक्ति को (दोनों परिचयोक्तियों को मिलाकर) ५० रु. का पुरस्कार दिया जाएगा। ★ दोनों परिचयोक्तियां केवल कार्ड पर लिखकर निम्न पते पर भेजें : चन्दामामा फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता, मद्रास-२६

अप्रैल के फोटो - परिणाम

प्रथम फोटो : मेरा बोझा कौन उठाये!

द्वितीय फोटो : इसे लादकर चलता जाये!!

प्रेषक : सत्येन्द्र कुमार, दहदहा, डाकघर : कुरुद, जिला - रायपुर (म. प्र.)

Printed by B.V. REDDI at Prasad Process Private Ltd., 188 N.S.K. Salai, Madras 600 026 (India) and Published by B. VISWANATHA REDDI on behalf of CHANDAMAMA PUBLICATIONS, Chandamama Buildings, Vadapalani, Madras 600 026 (India). Controlling Editor: NAGI REDDI.

Double Offer From NP

1 Free! Colourful dry transfers with every pack of

NP DUBBLE BUBBLEGUM

DEMAND FROM THE DEALER:
A colourful dry transfer picture of an attractive cartoon character

HOW TO USE THE DRY TRANSFER
* No ironing

1. Remove the paper backing. Keep the transfer face upwards pressed flat on any surface you please.
2. Rub quickly and lightly, starting from the top and working your way down.
3. Pull the sheet back. Lo! and behold! The picture is transferred.

2 Take a big breath and blow it!

NP Dubble yum
SOFT & JUICY BUBBLE GUM
ARTIFICIALLY COLOURED AND FLAVOURED

Happy Birthday!
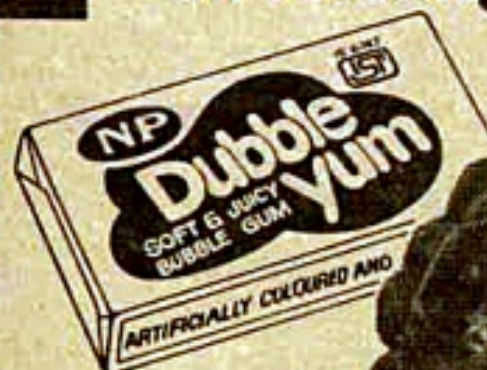
Free! ONE NP WONDER BALLOON

HURRY! LUCKY OFFER OPEN FOR LIMITED PERIOD

QUICK!
Collect your balloon on the spot from the dealer in exchange of Dubbleyum New Lucky Coupon.

Dattaram/NP/2-86